के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं।

श्रृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

आत्म दर्शन

१ मानवीय दर्शन २७ ०७ १९८७

देखो, मुनिवरों! श्राज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, श्राज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामन मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सर्वत्र है श्रौर कोई स्थली ऐसी नही हैं जहाँ वे परमपिता परमात्मा न हों। एक एक श्रणु श्रौर परमाणु में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा विद्यमान रहती है जिससे हमारे यहाँ विज्ञान श्रौर मानवीय दर्शन दोनों एक ही सूत्र के मनके कहलाते हैं जैसे माला में मनके भिन्न भिन्न है परन्तु सूत्र एक ही है तभी वह माला का स्वरूप धारण करता है।

हमारे यहाँ वैदिक ऋषियों ने प्रत्येक वेदमन्त्र के ऊपर गम्भीर श्रध्ययन किया श्रौर उन्होंने इनती ऊँची उड़ाने उड़ी हैं कि प्रत्येक वेदमन्त्र में सर्वत्र ब्रह्माण्ड की प्रतिक्रियाएं दृष्टिपात होती रही है। क्योंकि उन्होंने उसी वेदमन्त्रों में तीन प्रकार को भावावेश किया है मानो एक ही वेदमन्त्र में तीप प्रकार की धाराये विद्यमान हैं या यूं उच्चारण करें कि वह तीन मनके है सूत्र केवल एक ही है। इसीलिए हमारे वैदिक श्राचार्यों ने ऊँची ऊँची उड़ाने उड़ते हुए, श्रपने समीप ज्ञान, विज्ञान श्रौर मानवीय दर्शन तीनों को श्रपनाते हुए ब्रह्माण्ड श्रौर पिण्ड, दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास किया, दोनों का एकोकीकरण किया कि जो ब्रह्माण्ड की कल्पनायें हैं या ब्रह्माण्ड में जो क्रियाकलाप हो रहा है वही मानवीयतव में भी विद्यमान है इसी प्रकार हमारे यहाँ तीन मनके हैं श्रौर प्रत्येक वेदमन्त्र उनकी विवेचना करता रहता है बिना तीन भव के हम वेदमन्त्र को जान नही पाते, न उनमें से मानव दर्शन को जान सकते हैं, न विज्ञान को जान सकते हैं श्रौर ज्ञान से हम शून्य हो जाते हैं। परन्तु जब प्रत्येक वेदमन्त्र में तीन प्रकार के भावों को दृष्टिपात करोगे, तीन प्रकार की धाराश्रों के ऊपर विचार विनिमय होगा तो उसमें ज्ञान, विज्ञान श्रौर मानवीयता दर्शन दृष्टिपात होगा। उसमे जब तीनों दृष्टिपात करने लगोगे तो वेदमन्त्र का श्राशय श्रौर ज्ञान की प्रतिभा हमारे समीप श्रा जाती है।

वेदमन्त्र में यह श्राया है कि समाज को ऊँचा बनाना चाहिए। जो वेदमन्त्रों के श्राशय को विचारने वालें हैं, उन्हें मानव दर्शन को श्रौर मानवीयता को ऊँचा बनाना है। जिससे समाज में कुरीति न रहे, समाज में एक महानता का दर्शन हो जाएं। जब हम वेदमन्त्रों के श्राशय को त्याग कर उसका विशुद्ध रूप न लेकर, संसार की उन कुरीतियों में चले जातो हैं जहाँ मानव दर्शन का ह्रास होता है तो वही काल इस संसार में बड़ा क्लिष्ट रहता है वह ह्रास काल कहलाता है जिसमैं ज्ञान, विज्ञान श्रौर मानव दर्शन, तीनों को पृथक पृथक कर दिया जाता है क्योंकि ये तीनों एक ही सूत्र के मनके हैं। जिस काल में तीनों को पृथक पृथक कर दिया जाता है। उस काल में बुद्धिमानों का ह्रास हो जाता है यौगिक पुरूष श्रपनी श्राभा में निहित हो नही रहते। उससे राष्ट्रीयता में भी भिन्न भिन्न प्रकार की कुरीतियां श्रा करके रक्तमयी राष्ट्र बन जाता है।

यह वाक्य मैंने इसीलिए कहा है कि कहीं से यह प्रेरणा श्रा रही है मेरे प्यारे महानन्द जी का जो मनोनीय विचार है उनकी जो प्रेरणायें है वह प्रायः बड़ी सार्थक रहती हैं श्रपने में कुछ न कुछ उद्गीत गाने के लिए श्रपनी प्रेरणाश्रों के स्रोत को महानन्द जी बहाते रहते हैं परन्तु वह प्रेरणायें मुझे प्राप्त हो रही हैं इनके विचारों में बड़ी सार्थकता है। राष्ट्रीयता के ऊपर तो यह बड़ा बल देते रहे हैं द्वितीय जितनी भी समाज में कुरीतियां है। उसके ऊपर भी बड़ा बल देते रहे हैं। श्राज मैं इन बलातीतियों में तो जाना नही चाहता हूँ विचार केवल यह कि विचारों की एक भूमिका बनानी है श्रौर वह भूमिका मैं बनाना चाहता हूँ।

आत्म दर्शन

बेटा! वेदमन्त्रों में यह आता रहता है कि मानव दर्शन, विज्ञान और ज्ञान किसे कहते हैं। यह तीन प्रकार की धारायें हमारे वैदिक साहित्य में आती रहती हैं इन तीनों को जब हम एक सूत्र में लाते हैं तो इनकी जानकारी उसी काल में विवेक की उत्पति भी हो जाती है और विवेक वहाँ होता है जहाँ यौगिकवाद होता है। विवेक और यौगिकवाद, दोनों को व्यष्टि और समष्टि का दर्शन करा देते हैं। जहाँ समष्टि व्यष्टि का दर्शन होता है वहाँ अभिमान नही होता, वहाँ अहम्भाव नहीं होता। जहाँ अहम् भाव नही होता वहाँ चेतना का साम्राज्य रहता है। चेतना का साम्राज्य आ जाने पर मानव अपने में यह स्वीकार करता है कि मैं जो चेतना में विद्यमान हूँ और वह चेतना ऊर्ध्वा में ध्रुवा में, प्रत्येक दिशा में क्रियाकलाप कर रही है।

ईश्वरीय निष्ठा

ईश्वरीय निष्ठा मार्ग को यदि हम अपनाना चाहते हैं तो हममें निष्ठा होनी चाहिए कि ईश्वर है। बहुत पुरातन काल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे उनके हृदय में यह जिज्ञासा हुई कि परमपिता परमात्मा जिसको हम अपना आश्रय स्वीकार करते हैं, वह है अथवा नही है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपनी देवी से मध्य रात्रि में बोले कि हे देवी! तुमने भी बहुत काल तक विद्यालयों में अध्ययन किया है, ब्रह्मवेत्ता आचार्यों के गृहों में तुमने वास किया है, मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम्हारी ईश्वर में क्या विश्वसनीयता है, ईश्वर को तुम क्या स्वीकार करती हो, उन्होंने कहा प्रभु! बहुत समय से मेरे हृदय में यह विचार आ रहा था कि मैं महर्षि से यह प्रश्न करूं कि ईश्वर है या नही, हमें उस निष्ठा हो जानी चाहिए। दोनों एक ही विचारों के जिज्ञासु बन गये। जब दोनों इसी चिन्तन में लग रहे थे तो एक समय महर्षि कागभुषुण्ड जी उनके आश्रम में आ पंहुचे। महर्षि कागभुषुण्ड से उन्होंने प्रश्न किया कि महाराज! हम जिस चेतना के सम्बन्ध में नित्यप्रति परमपिता परमात्मा का यश गान गाते रहते है। उसी का आराधना में लगे रहते हैं, वह है या नही? हमें यह निष्ठा तो होनी ही चाहिए।

महर्षि कागभुषुण्ड जी ने कहा कि मैंने बारह वर्ष तक इस प्रकारके अनुष्ठान किए हैं माता की लोरियों का जब मैं पान करता था तो माता यह कहा करती थी कि प्रभु! हैं उन्होंने सब से उत्तम सूत्र यह दिया कि माता के गर्भस्थल में जिस परमपिता परमात्मा ने मेरे शरीर की रचना की है और उस रचना स्रोतों में इस प्रकार का पदार्थ दिया है कि बाल्य उत्पन्न होने से पूर्व उसके यन्त्र को स्थिर किया, तो वह यन्त्रवादी कोई न कोई सत्ता है। उन्होंने परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में एक सूत्र और दिया। निष्ठा जाने के सम्बन्ध में यह विचार दिया कि मानव जब बाल्य से युवा होने पर अपनी सीमा जा कर, अपनी स्थलियों पर स्थिर हो जाता है तो यह स्थिर करने वाली कोई न कोई सत्ता है जहाँ ध्रुवा को ऊर्ध्वा में, ऊर्ध्वा से ध्रुवा में जो निश्चित कर देता है, निश्चयात्मक निर्णय देता है। क्योंकि मानव तो कोई निर्णायक नही हैं माता निर्णायक नही हैं, पिता भी निर्णायक नही हैं कि मेरा बालय इतना ऊर्ध्वा होने के पश्चात सीमाबद्ध हो जाएं।

कागभुषुण्ड जी ने कहा कि मेरी प्यारी माता ने यह सूत्र दिया, मैं माता के इन शब्दों को स्मरण करता रहता हूँ। अब मैं कुछ समय से यह अनुष्ठान कर रहा हूँ कि मैं इन वाक्यों को जानूं कि चैतन्य देव है या नही, क्योंकि इसमें भिन्न भिन्न प्रकार के सूत्र बनते रहते हैं, भिन्न भिन्न प्रकार की धारायें बनती रहती हैं मैंने यह विचारा कि परमपिता परमात्मा जब निष्ठित होते हैं जब हम उसकी विश्वसनीयता पर आरूढ़ हो जाते हैं, जब हमारा आहार पवित्र होता है आहार तरंगें उत्पन्न करता है जब मन, प्राण और आत्मा, तीनों का एक सूत्र बनता है तो जो भी हम आहार करते हैं उनमें तरंगों का प्रादुर्भाव होता है। उन तरंगों से हम किसी काल में नास्तिक बन जाते हैं और किसी काल में आस्तिक बन जाते हैं ना अस्ति, वे परमपिता परमात्मा नही है किसी काल में यह चिन्तन करते हैं कि अस्ति, वे परमपिता परमात्मा है वह चैतन्य है, सृष्टि का रचियता है, रचनाकार है। इस प्रकार जब

निष्ठा में निष्ठित हो जाते हैं विचारों में निष्ठित हो जाते हैं उसके पश्चात भी यदि हमें विश्वास नही होता तो हमें अब तप करना है प्रत्येक इन्द्रियों को हम वायु सेवन कराते हैं, कहीं याग हो करते हैं, और इसकी सुगन्धि को ही पान करते हैं, कहीं याग करते हैं, और इसकी सुगन्धि को ही पान करते हैं। उसके पश्चात हमें यह विश्वास होता है कि ब्रह्मवर्चा लोकाम् सम्भवाम्।

वेद की एक आख्यिका स्मरण आ जाती है वेदमन्त्र यह कहता है कि वे परमपिता परमात्मा है और वह अपने में ही निहित रहता है ब्रह्माण्ड अपने में हैं और ब्रह्माण्ड में हम हैं। हम और ब्रह्माण्ड एक ब्रह्म में निष्ठित हो रहे हैं। माता अरून्धती और वशिष्ठ दोनों जिज्ञासु थे, कागभुषुण्ड जी के कथनानुसार दोनों में निष्ठा हो गई। सबसे प्रथम हम यह जाने लेते हैं कि वह सत्ता है उसमें जब निष्ठित हो जाते हैं, उसमें जब विश्वसनीय हो जाते हैं तो उसके पश्चात हमारे द्वारा पंचाग्नि कौन सी है? मैंने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय देते हुए कहा है कि पंचाग्नि वह है कि जिससे हमारी पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ उदबुद्ध हो जाती हैं, यह प्रकाश में आ कर जागरूक हो जाती हैं इन्हीं में ज्ञान हैं, वेद है, इन्हीं में एक यौगिकवाद निहित रहता हैं।

हमारे यहाँ बहुत से विचार आते रहते हैं। मैं चर्चायें करता रहता हूँ पुत्रों! इसके सम्बन्ध में निष्ठित हो करके भी बहुत सी चर्चायें की हैं। विचारधीन हो करके, अपने विचारों में विचारणीय वाक्यों को ले करके हम अपने में अपनेपन को ही जानते रहते हैं अपनेपन को जान कर हम प्रभु को जब तक नहीं जान पाते तब तब यह संसार इस अज्ञानता के जगत में प्रवेश होता रहता है और इसी को निहारता रहता है वशिष्ठ ऋषि महाराज और माता अरून्धती के विचारों में ब्रह्मनिष्ठ रही है। इस ब्रह्मनिष्ठा में इनका विचार विनिमय होता रहता। गृह आश्रम को यदि ऊँचे क्षेत्र में ले जाना हो तो पति पत्नी दोनों इस प्रकार के महान विचारों वाले हों जिससे एक दूसरे के ज्ञान की, मन की विचारधारा को दोनों एक दूसरे में दृष्टिपात कर सके। दृष्टि का अर्थ है जो मन में तरंगें आती रहती हैं, उन तरंगों को समावेश कहाँ होता हैं क्योंकि प्रत्येक मानव में एक बड़ी विचित्र आभा रहती है।

मन

बहुत समय हुआ जब मेरे प्यारे महानन्द जी मनोवृत्तियों में रत्त रहते थे तो एक समय प्रसंग रहा कि यह मन बड़ा चंचल है इसके ऊपर बड़ा अनुसन्धान होता रहा क्योंकि मन जब जड़ पदार्थ है तो चंचलता का इसका प्रसंग ही नही होता। सृष्टि में जब किसी काल में मानव का प्रादुर्भाव हुआ, इस आत्मा का इस शरीर से समन्वय हुआ तो उस समय दो ही धाराओं का जन्म हुआ। वह एक धारा मनस्तव है, एक प्राणत्व है प्राण गति है आरै गति भी ज्ञान से शून्य है और एक दूसरे में प्रतिभाषित हो रहे हैं। कैसा विचित्र यह मानव दर्शन है इसके ऊपर विचार विनिमय करना है परमात्मा के जो निष्ठित प्राणी हैं या भगतजन हैं, उनको यह विचारना है कि मन जड़ होते हुए चंचल कैसे हो सकता है क्योंकि यह तो कहीं का कहीं लगा रहता है। तो इससे यह सिद्ध होता है कि मन के पीछे कोई और दूसरी सत्ता है जिसके कारण तुम्हें यह मन की चंचलता दृष्टिपात आती है, क्योंकि यह जड़ है।

एक मानव एक स्थली पर विद्यमान है, वह जहाँ मन को लगाना चाहता है वही लग जाता है इसको परमात्मा के चिन्तन में लगा दो, माला के मनकों को एक गणित में लगाने लगो तो मन वहीं लग जाता हैं संसार के नाना प्रकार के व्यापार में लगा दो तो मन वही लग जाता है यह प्रकृति की तरंगों के साथ में ऊँची ऊँची भावनाओं का ला करके उसका साकार रूप बनाता रहता है इससे यह सिद्ध हुआ कि मन चंचल नही हैं क्योंकि मन तो किसी का प्रतिबिम्ब बना हुआ है। यह तो कहीं से लाता है और उसे बिखेर देता है यह सिद्ध होता है कि ऋषि मुनियों ने भी इसके ऊपर टिप्पणीयाँ की हैं वैदिक साहित्य वालों ने भी कहा है कि यह मन चंचल नही हैं परन्तु मन के पीछे तरंगे हैं मन के पीछे जो भाव हैं उनके आधार पर उनका प्रतिबिम्ब आता है। जैसे मानव के

नेत्रों पर हरित रंग होगा तो हरित दृष्टिपात आयेगा। किसी भी प्रकार का रंगातीत हो उसको वैसा ही दृष्टिपात आता है, सूर्य तो अपनी स्थिति में स्थिर रहने वाला है परन्तु नेत्रों में जैसा प्रतिबिम्ब है, जैसा रंग है वैसा दृष्टिपात करता है नेत्रों के पीछे मन है क्योंकि मन ते तो प्राण की गति को विभाजन करना है, उसे तो वहाँ लगा दिया है मन जब सूर्य के भिन्न भिन्न प्रकार के रंगों को गणना में लाने लगता है, यह प्राण कहीं से सत्ता लेकर गणना करने लगता है विचार यह कि जब दार्शनिक रूप से विचार करोगे तो मन को चंचल स्वीकार नही कर सकोगे। यह तो कहीं न कहीं लगा हुआ है। इसके पिछले भाग में कोई न कोई सत्ता है और वह सत्ता ही इस मनस्तव को चंचल बनाती है सत्ता समन्वय प्रकृति के तन्तु से रहता है प्रकृति भी जब जड़ पदार्थ है उसमें भी जड़वत दृष्टिपात आता है तो विचार आता है यह सब चेतना का व्यापार है चेतना में चेतना का जब समावेश हुआ तो एक सम्प्रज्ञ हो करके प्राण की धाराओं से तरंगों का जन्म हुआ, ज्ञान की धारा उसमें सम्मिश्रित हो जाती हैं और मनस्तव अपना क्रियाकलाप प्रारम्भ करने लगता हैं।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, माता अरूणधति और महर्षि कागभुषुण्ड जीर महाराज तीनों जब विचारों में संलग्न हो गएं तो उन्हें यह सिद्ध हो गया कि यह विचारणीय है इन वाक्यों के ऊपर हमें विचार करना है उन पर मनन चिन्तन होना चाहिए। जब मनन चिन्तन होता है तो उसी से उन धाराओं का जन्म होता रहता है वही धाराएं इस संसार का विभाजन कर देती हैं, संसार को एक विशाल आभाकृतियों में रत्त करा देती है। विचार विनिमय क्या कि जब समाज ऊर्ध्वा में ले जाने वाला विचार होगा, ब्रह्म की निष्ठा वाला विचार गृह मंव होगा, जैसे गुरु और शिष्य दोनों में इसी प्रकार का भाव होना चाहिए तो यह समाज सर्वत्र ऊँचा बन जाएगा। राजा और प्रजा के प्रतिनिधि, दोनों ब्रह्मज्ञान का मन्थन करते वाले, राज्यसभा में जिस भी काल में वह दोनों ब्रह्म की चर्चा करते हुए विद्यमान हों कि उस ब्रह्म में कितना अनुशासन है, उसके आधार पर जब समाज का राष्ट्र का निर्माण होता है तो एक भावातीत उत्पन्न हो करके राष्ट्र को हम ऊर्ध्वा में ला सकते हैं।

विचार केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए उसके ऊर्ध्वामयी जगत को जानते हुए अपने में यह स्वीकार करें कि समाज का हम किस प्रकार का निर्माण कर सकते हैं ऋषि मुनियों की कुछ पद्धतियाँ हैं, उन्ही के आधार पर समाज का निर्माण होना चाहिए। महानन्द जी के आधुनिक काल के विचारों को श्रवण करते हुए, इनके विचारों को ऊर्ध्वागति बनाना यह हमारा कर्तव्य हैं आज का विचार यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए प्रत्येक वेदमन्त्र के ज्ञान, विज्ञान और मानव दर्शन को जब तक अपने में ग्रहण नहीं करेंगें तक तक समाज में मानवीयता और महानता नही आ सकती। महानता को लाने के लिए मानव सर्वत्र प्रयत्न करता रहता है आज से नही सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान के काल तक मानव नाना प्रकार के विचारों में संघर्ष करता रहा है, देवासुर संग्राम होता रहा है विचारों में भिन्न भिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ बन जाती है, उन रूढियों का विनाश करना और विनाश करके चेतना को लाना, यह महापुरूषों का कर्तव्य रहा है समय समय पर महापुरूष अपनी अपनी वार्त्ता प्रगट करते हैं और यहाँ से चले जाते हैं। प्रत्येक महापुरूष अपना अपना संघर्ष करते हैं देवासुर संग्राम होते उनकी समाप्ति हो जाती है परन्तु देवासुर संग्राम बना ही रहता है।

विचार यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए महानता को ऊर्ध्वा में लाना चाहते हैं क्योंकि परम्परागतों से ही, ऋषि मुनियों का यह मन्तव्य रहा है महर्षि कागभुषुण्ड जी ने यह कहा है कि भगवन्! मैंने नाना अनुष्ठान किए हैं और करता रहता हूँ इन्ही अनुष्ठानों में मैं सदैव संलग्न हूँ बारह वर्ष के अनुष्ठान करने से माता के उन विचारों को मैं साकार रूप देता रहता हूँ मैंने निश्चय कर लिया है कि परमपिता परमात्मा है परन्तु जब है तो उसी के आश्रित रहना है नाना प्रकार का प्रपंच या नाना प्रकार की एक दूसरे में भावातीत होना, यह

एक प्रियता है, ये केवल परमपिता परमात्मा में निश्चित होना है। उसे हम अपने में धारण करके यह विचारते रहे कि जो परमपिता परमात्मा जिन रूपों का नामकरण करता रहता है वह उसी प्रकार उसमें तरंगों का भावावेश कर देता है तो वह उसी में गमन हो जाता है।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि ऋषि मुनियों का यह मन्तव्य रहा है कि एक वस्तु जिसे हम स्वीकार करते हैं, वह है, परन्तु साथ में अपना अपना मन्तव्य, अपनी अपनी विचारधारा जो उसका व्यापक ज्ञान है, विज्ञान है एकोकी चेतना है उसके ऊपर विचार विनिमय होता रहेगा। एक वेदमन्त्र में ज्ञान, विज्ञान और मानव दर्शन यह तीन भाव लेकर गम्भीरता से अध्ययन होना चाहिए। एक वेदमन्त्र में ध्रुवा से ऊर्ध्वा में जाओगे तो ज्ञान, कर्म उपासना यह ती ही सिद्ध होंगें उसके पश्चात आध्यात्मिक विज्ञान, भौतिक विज्ञा और समाजिक विज्ञान, यह विज्ञान की तीन श्रेणी कहलाती हैं। एक ही वेदमन्त्र में तुम जब यह दृष्टिपात करोगे तो वेदमन्त्र के गर्भ में जो वस्तु विद्यमान है उसे जान लोगे। वैदिक साहित्य में तीन प्रकार की पूजा का अर्थ माना गया है एक तो निष्ठा, जिससे हम पूजा करते हैं एक पूजा का साकल्य, जिसके द्वारा हम पूजा करना चाहते हैं एक साकल्य पूजक, यह तीन वस्तु विद्यमान होती है। तो ज्ञान, कर्म और उपासना के रूप में हम परिणत हो जाएं, त्रिवाद में यह संसार माना गया हैं आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन पाठन होगा।

२ बाह्य एवं आंतरिक जगत की शुद्धि २८ ०७ १९८७

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गएं हैं उसका ज्ञान विज्ञान भी अनन्तमयी माना गया है हमारे यहाँ प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करता रहता है। उसके गुणों का गुणवादन करता रहता है। प्रत्येक वेदमन्त्र में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन आता रहता है जितना भी यह जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है जहाँ भी मानव उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान में अपने को रत्त कर देता है तो वह प्रायः उसी को प्राप्त हो जाता है आज हम इन वाक्यों को विचार विनिमय करते चले जाएं।

प्रत्येक मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ही उस परमपिता परमात्मा का अनुसरण करता रहा है और विचारता रहा है ऊँची ऊँची उड़ाने उड़ता रहा है जितना भी ज्ञान है, वह उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा कहलाती है उसी की महानता में मानव सदैव रत्त रहा है और विचारता रहा है कि वे परमपिता परमात्मा हमारा हमान चैतन्य देव है, वह अग्नेय है जो तेजोमय कहलाता है। प्रत्येक मानव अग्नि को अपने में धारण करना चाहता है प्रत्येक मानव को यह आकांक्षा बनी रहती है कि अग्नि परमपिता परमात्मामयी है। प्रातःकालीन अग्नि का द्योतक बन कर सूर्य द्यो से प्रकाश लेता है और संसार को ऊर्ज्वामयी बना देता है, प्रकाशमयी बना देता है इसी प्रकार परमपिता परमात्मा का जो ज्ञान विज्ञानमयी स्वरूप है वह अग्निमयी स्वरूप कहा जाता है आज हम तेजोमयी प्रभु की महती को जानने वाले बनें। लौकिकता परलौकिकता में जब हम प्रभु का चिन्तन करते हैं तो मानव के हृदय में एक अमूल्य ज्योति जागरूक हो जाती है वह ज्योति वाणी बन कर परमपिता परमात्मा की उपासक बन जाती है। मानव उसे अपने में ग्रहण करना चाहता है। वह उसे अपने में ही रत्त और अपने को उसमें रत्त करना चाहता है तो प्रातःकालीन पवित्र अग्नि के रूप में यह संसार उदबुद्ध हो करके प्रकाशमयी बन जाता है।

परमपिता परमात्मा, जो अग्निमयी है जो तेजोमयी है जिसका एक एक परमाणु में दिग्दर्शन हो रहा है, एक एक परमाणु में ब्रह्माण्ड की जिसकी रचना है वह कैसा अदभुत है हम उस परमपिता परमात्मा की महती का चिन्तन करते हुए, उस परमपिता परमात्मा को अपने में ग्रहण करते हुए अपनी मानवीय पद्धति को निर्माणित करते रहते हैं। उस मानवीय पद्धति को जब मानव क्रिया में लाना प्रारम्भ करता है तो यह संसार नवीनता की ज्योतिमयी बन जाता है परमपिता परमात्मा ने जैसे हमारे शरीर रूपी राष्ट्र का निर्माण किया है इसी प्रकार यह बाह्य जगत वाला संसार भी राष्ट्र का निर्माण किया है। इसी प्रकार यह बाह्य जगत वाला संसार भी राष्ट्र रूप आ दृष्टिपात आ रहा है। ऋषि मुनियों ने इस संसार के मानवीय जीवन पद्धति का उदबुद्धता में रूपान्तर किया है। इसका निर्माण और निर्माण की जो शैली है वह बड़ी विचित्र रही है क्योंकि उनके विचार विनिमय का जो माध्यम रहा है, वह मानव के लिए मानव के लिए सुखद रहा है उसमें निःस्वार्थता है उसमें निष्पक्षता है वह अपने में अग्निमयी स्वरूप कहा जाता है।

ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा हुए हैं। अथर्वा के यहाँ एक समय जालवी ऋषि का आगमन हुआ। महर्षि जालवी ने अथर्वा से कहा कि महाराज! इस संसार में मानव के दो प्रकार के स्वरूप माने गएं हैं एक स्वरूप आन्तरिक जगत है एक स्वरूप बाह्य जगत है दोनों प्रकार के जगत के ऊपर आपने अध्ययन किया हे तो मुझे यह निर्णय कराईए

कि किस प्रकार बाह्य जगत को ऊँचा बना सकते हैं, बाह्य जगत में हम अपनी मानवीय पद्धति को किस प्रकार निर्माणित करें। अथर्वा ने एक वेदमन्त्र न्यौदा में से उच्चारण किया। उन्होंने कहाकि व्रत्तम ब्रहे व्रणाः वाचन्नमम् कृतं लोकः हे भगवन! जालवी! मेरे विचार में तो यह आता है कि बाह्य जगत वाला जो संसार है, वह धर्मनिष्ठा और कृतियों में रत्त रहना चाहिए। क्योंकि बाह्य जगत तभी ऊँचा बन सकता है। जब एक दूसरा मानव एक दूसरे का सहयोगी बनता रहे।

परमपिता ने परमात्मा का सृजन किया अथवा इसे निर्माणित किया है ऐसा प्रतीत है कि जब ज्ञान के अन्तिम चरण में जाते हैं तो एक दूसरा पिरोया हुआ है जैसे माला है, माला में भिन्न भिन्न प्रकार के मनके हैं और वह मनके एक सूत्र में पिरोएं हुए हैं। सूत्र और मनके दोनों भिन्न भिन्न हैं परन्तु दोनों एक दूसरे में पिरोए हुए दृष्टिपात आते हैं इसी प्रकार यह जितना भी यह जगत है जितना यह ब्रह्माण्ड है एक दूसरें में पिरोया हुआ हे चाहे लोक लोकान्तरों में चले जाओ चाहे मानवीय क्षेत्र में आ जाओ परन्तु सब एक दूसरे में गुथे हुए हैं जैसे नाना प्रकार की वनस्पतियां अपने में पिरोई हुई हैं, एक दूसरे के गुणों में परिणत होकर वह गुणाध्यानम् बनी रहती है, इसी प्रकार यह जो मानव कृतियां हैं मानवीय प्राणीमात्र है वक एक दूसरे में इस प्रकार गुथा हुआ है जैसे प्राण प्रतिष्ठा हो रही है, प्राण पिरोया हुआ है, एक एक परमाणु ही, एक एक कण को सुगठित बना देता है। जैसे माता के गर्भस्थल में मानव का, प्राणी मात्र के पिण्ड का निर्माण होता है तो मेरे पुत्रों! प्राण की उसको पिण्ड रूप में परिणत कर देता है। वह प्राण ही नाना प्रकार की इन्द्रियों के रूप में अथवा प्रवृत्ति के रूप में जब उद्धबुद्ध होता है तो उसके नाना प्रकार के स्वरूप बन करके अपने में रत्त हो जाते हैं यह जो संसार रूपी पिण्ड बना हुआ है, यह भी एक प्राण प्रतिष्ठा कहलाती है परमाणुओं के विकृत हो जाने का नाम ही अन्धकार कहा जाता है। पिण्ड एक दूसरे में सुगठित हो जाते हैं। परमाणुओं में सुगठितता आ जाती है और पिण्ड के रूप में एकोकीकरण हो जाता है तो वह एकोकीकरण ही एक दूसरे की आभा को जन्म देता है। एक दूसरे की प्रतिभा को जन्म दे कर ही, उसको साकार रूप बना कर उसको अपने में पिरोना है हमें अपने को उसमें पिरो देना है विशेष चर्चा तो मैं नही करूंगा परन्तु विचारों को विचारों में पिरोना हमारा कर्तव्य है।

महर्षि जालवी ने कहा कि प्रभु! ज्ञान और विवेक का क्या समन्वय रहता है, बाह्य जगत से इसका क्या सम्बन्ध है? आन्तरिक जगत विवेक से परिपूर्ण है। वह विवेक में जब आता ै तो विवेक किसका होता है उस समय अथर्वा ने कहा कि हे भगवन! आप तो यह जानते हुए से प्रतीत होते हैं परन्तु चलो जितना भी मेरे से बन पाता है, मैं इसका उत्तर दिए देता हूँ मैं पूर्ण रूपेण तो इसका उत्तर अवश्य दूंगा। हे प्रभु! ज्ञान के पश्चात विवेक जागरूक होता है। जैसे एक मानव किसी वस्तु को जानने लगता है तो जान कर जब उसे उसके अंगों उपांगों का ज्ञान हो जाता है तो उससे उस उदासीन होता है उदासीन होना ही विवेक है अथवा उसे हम वैराग्य की संज्ञा प्रदान कर देते हैं। इसीलिए प्रत्येक वस्तु को जानना अंगों उपांगों से जान करके उससे उदासीन होने का नाम ही विवेक है और उसके पश्चात योग की दशा में हम परिणत हो जाते हैं। जब जालवी से अथर्वा ने यह वाक्य उच्चारण किया तो उनके हृदय में शान्ति की स्थापना हुई और उन्होंने कहा कि धन्य हे प्रभु! अथर्वा ने कहा कि नहीं विवेकाम् ब्रहोः सम्भवः आख्यिका कहती है कि हम संसार के बाह्य जगत में नाना प्रकार की रूढ़ियों में प्रवेश करते हैं क्योंकि रूढ़ियों के बिना भी संसार में पालन नही होती। रूढ़ियाँ होना भी अनिवार्य है परन्तु रूढ़ियाँ विनाश के मूल में भी हमें ले जाती हैं एक रूढ़ि यह है कि माता यह जानती है कि शरीर आत्मा है, इसमें पंच महाभूत हैं और इसमें वृत्तियाँ हैं दस प्राण है, उस इन्द्रियाँ हैं, मन, बुद्धि, चित, अहंकार हैं माता अंगों उपांगों से जानती हुई भी उसके पश्चात उसका पालन कर रही है क्योंक पुत्र में भी पंच महाभूत हैं, दस इन्द्रियाँ हैं, मन, बुद्धि, चित,

अहंकार हे माता! अंगों उपांगों से जानती हुई भी उसके पश्चात उसका पालन कर रही है क्योंकि पुत्र में भी पंच महाभूत हैं दस इन्द्रियां, प्राण हैं वह अपने में मन, बुद्धि, चित, अहंकार की प्रतिभा मं रह है यह जानने के पश्चात भी पालन एक कर्तव्यवाद की रूढ़ि है। संसार में जो भी मानव कर्तव्यवाद में रूढ़ि लाता है, वह कर्तव्यवाद को ऊँचा बना देता है।

एक ज्ञान की रूढ़ि होती है। एक अज्ञानता की रूढ़ि होती है। अज्ञानता की रूढ़ि वह कहलाती है जिसमें राष्ट्र और समाज का आह्वान न किया जाएं पर ईश्वर या परमात्मा के नामों पर नाना प्रकार की रूढ़ियाँ उत्पन्न हो जाती हैं वह रूढ़ियाँ अज्ञान के अन्धकार के कारण होती हैं वेद से कदापि किसी रूढ़ि का जन्म नही होता। रूढ़ि में परमात्मा का दर्शन नही होता। जो मानव रूढ़ि में परमात्मा का दर्शन करना चाहता है वह कर नही पाता क्योंकि परमात्मा रूढ़ि में नही रहता। बहुत पुरातन काल हुआ जब महर्षि अथर्वा ने यह वाक्य कहा था कि रूढ़ियों का ह्रास हो जाना, रूढ़ियों का विनाश हो जाना कर्तव्यवाद की वेदी पर मानव को तत्पर हो जाना, यह मानवीयता कहलाती है इस मानवीयता को हम सदैव ऊँचा बनाते रहें इसको जानव दर्शन की संज्ञा प्रदान की हाती है।

संसार में दो मार्ग मानव के समीप आते रहते हैं एक मानव ज्ञान और विवेक में प्रवेश करना चाहता है। एक मानव संसार का सब जनता में जर्नादन को स्वीकार करता हुआ भक्तजन बनना चाहता है। देखो, जब वह संसार के प्रत्येक कण कण में ईश्वर का भान करता है ईश्वर को दृष्टिपात करता है, चेतन ही चेतना को दृष्टिपात करने लगता है तो वह भक्तजन कहलाता है जब भक्त सबमें अपने भगवान को दृष्टिपात करने लगता है तो उसमें उसके पश्चात विवेक उत्पन्न होता है उस विवेक में प्रभु ही प्रभु दृष्टिपात करते वह इस चेतना मंन रत्त हो जाता है।

एक ज्ञान का मार्ग है जो ज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है। भक्तजन को भी ज्ञान चाहिए, विवेक चाहिए, दोनों में विवेक होना चाहिए, वह विवेक, वह वृत्तियाँ रूढ़िवाद से पृथक रहती हैं आत्मा जब परमात्मा ही परमात्मा को दृष्टिपात करता है तो वह परमात्मा के समीप चला जाता है ज्ञानी जहाँ भी दृष्टिपात करता है वह कहता है कि इसमे प्रभु ने कितनी प्रतिभा, प्रतिनिष्ठा बनाई है इसको मैं जानना चाहता हूँ परमात्मा की रचाई हुई प्रत्येक वस्तु को वह क्रियात्मक में लाना चाहता है वह ज्ञान के द्वारा संसार को मापने लगता है संसार को मापता हुआ वह लेक लोकान्तरों की माला बना लेता है। उस माला को बना करके, उसे धारा करता हुआ वह विवेक में परिणत हो जाता है। जिस भी मार्ग में हमें जाना है उसमें विभोर होना है मन, प्राण और विचार जब तक संलग्नता में नही आते तब तक मानव उस परमपिता परमात्मा की महती को नही जान पाता। परमात्मा की महती को जानना बहुत अनिवार्य है।

वेद का मन्त्र सबसे प्रथम यह कहता है कि हे मानव! तू अपने अज्ञान को समाप्त कर। यह जो अन्धकार तेरे द्वारा आ गया है, इस अन्धकार को समाप्त कर। उस आभा को जानने का प्रयास कर जिसको हमारे पूर्वजों ने, ऋषि मुनियों ने तपस्या द्वारा अपना कर उस मार्ग को प्राप्त किया उसी मार्ग में हमें अग्रणीय बनना है। आज मैं यह उच्चारण करना चाहता हूँ। और ऋषि मुनियों का भी यह विचार रहा है कि यह संसार उस परमपिता परमात्मा की एक महती अथवा उसकी रचना है, उसकी यह माला है उस माल को हमें धारा करते हुए अग्रणीय बनना है।

आज मैं तुम्हें ऋषि मुनियों के उन विचारों में ले जा रहा हूँ जिन विचारों में आन्तरिक और बाह्य जगत, दोनों की विवेचना होती रहती है, दोनों के लिए मानव प्रयास करता रहा हैं हमारे ऋषि मुनियों ने यह पद्धति बनाई है कि बाह्य जगत जब ऊँचा बनता है जब कि एक दूसरे में प्रीति बनी रहे और एक दूसरा त्याग पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाला हो। जैसे एक माता के चार पुत्र हैं, एक माता के दो पुत्र हैं। जब दोनों को और चतुर्थता को एक सूत्र में मापने वाली माता हो, विधाता एक दूसरे से स्नेह करने वाले हों, त्यागपूर्वक जो स्नेह करते हैं वह स्नेह

एक मानवीय पद्धति बन जाती है। इस संसार में पृथ्वी स्थल पर, इसमाता वसुन्धरा के ऊर्ध्वा में वह बसने योग्य हो जाता है और वह विचारता है कि मुझे एक दूसरे से स्नेह करना है प्रीति करनी है त्याग पूर्वक एक दूसरे को ऊँचा बनाना है। यह एक पद्धति है एक राष्ट्रवेत्ता पुत्र चाहता है कि राष्ट्र को मैं भोगना चाहता हूँ एक पुत्र कहता है कि राष्ट्र का जिसे अधिकार है, उसे प्राप्त होना चाहिए। महापुरूष यह कहते हैं कि नही इसको त्यागपूर्वक तुम भोगने के इच्छुक बनो, जिससे संसार तुम्हारे क्रियाकलापों सु सुखद में चला जाएं आनन्द में प्रवेश कर जाएं। तो ऐसी वैदिक परम्परायें और धारणायें हैं।

बेटा! आज का हमारा विचार यह कि हम संसार में यदि मानवीय पद्धति को लाना चाहते हैं जिससे हमारी एक दूसरे में प्रीति बनी रते तो जैसे हमारे मानव शरीर में प्राण है, वह प्राण एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं, एक दूसरे की प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित रहते हैं प्राण के पश्चात अपान अपान है। अपान प्राण की प्रतिभा को ले करके प्रतिष्ठित होता रहता है। उसके गुणों की प्रतिभा अथवा गुणों की प्रशंसा करता रहता है यह उदान भी अपने में प्रतिष्ठित है। यह अपान की वृत्तियों को ले करके अपने गुणों का बखान कर रहा है। इसी मानव शरीर में यह प्राण एक दूसरे में प्रतिष्ठित होते रहते हैं एक दूसरे से गुथे हुए हैं। यदि पांचों में अपनी विभाजन क्रिया आ जाएं या प्रीति न रहे या इसमें यथार्थता आ जाएं तो यह मानवीय तन नही रहेगा, यह समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार हमें यह विचारना है कि हम एक दूसरे से गुथे, इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करते हुए अपने को उसमें पिरोया हुआ स्वीकार करेंगें तो बेटा! हमारा जीवन पवित्रतव को प्राप्त होता रहेगा। इस परमपिता परमात्मा के अमूल्य जगत में आए हैं इसीलिए यहाँ अपनी एक विचारणीरय प्रतिभा बनाते हुए, अपने में प्रतिष्ठावादी बन करके उस परमपिता परमात्मा की अमूल्यता को जानते हुए हमें इस संसार सागर पार होना है।

विष्णु

जालवी जी ने महर्षि से आगे प्रश्न किया कि महाराज! हम यह जानना चाहते हैं कि हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में सबसे प्रथम विष्णु शब्द की विवेचना आती रहती है कहीं विष्णु प्राण को स्वीकार किया है, कहीं विष्णु परमात्मा को कहा है, कहीं विष्णु इस ब्रह्माण्ड को कहा है, कहीं विष्णु राजा को कहा है हे प्रभु! यह विष्णु क्या है ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने कहा कि विष्णु पालन करने वाले को कहते है। अब पालन करने वाले में कोई भी आ जाएं वही विष्णु कहलाता है। हमारे यहाँ माता का नाम विष्णु कहा जाता है क्योंकि माता पालन करने वाली है। वेदमन्त्रों का अध्ययन करने वाली है मेरी पवित्र माता हो तो विष्णु के रूप में उसकी विचित्रताएं दृष्टिपात आती रहती हैं। वह पालन करने वाली है परन्तु प्रत्येक स्वरूप में पालन हो रहा है। परमपिता परमात्मा का नाम विष्णु है, वह सत्य है, चेतना है ज्ञान स्वरूप है, वेदज्ञ है। जिसे प्रकाशमयी कहा जाता है, वे परमपिता परमात्मा विष्णु के रूप में विद्यमान रहते हैं, वह सर्वत्रता में विद्यमान है। वह हमारा कल्याण करने वाले हैं। और पालन करने वाले हैं इसीलिए परमात्मा का नाम विष्णु कहा जाता है विष्णु उस राजा को भी कहते हैं जो नाना पकार की रूढ़ियों को राष्ट्र में नही आने देता और जो केवल विशुद्ध रूप से पालन करता है जो राजा यह चाहता है कि मेरे राष्ट्र में महानता आ जाएं, मेरे राष्ट्र में पवित्रता आ जाएं तो राजा प्रातःकाल अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके उन क्रियाकलापों को करना प्रारम्भ कर देता है। राजा जब उन क्रियाओं को प्रारम्भ करता है तो प्रजा उसका अनुसरण करती है और प्रजा महान बन जाती है।

बेटा! एक समय गोवणीवृत्तिका एक ऋषि के द्वार पर पंहुचे। उन्होंने कहा कि प्रभु! मैं अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहता हूँ, उसे कैसे स्वर्ग बनाऊं? उन्होंने कहा कि यदि तुम्हें अपने गृह को स्वर्ग बनाना है तो सबसे प्रथम तुम्हें अपने को अनुशासन में करना है। जब तुम अपने में अनुशासित हो जाओगे तब तुम्हारे गृह में जितने

प्राणीमात्र हैं, वह सब तुम्हारा अनुसरण करने लगेंगें। तुम्हारी क्रियाओं में प्रतिभाषित हो जाएंगें। तो तुम्हारा गृह स्वर्ग बन जाएगा। वे अपने गृह में पहुचे तो उन्होंने विचार किया और विचारते हुए अपनी इन्द्रियों पर संयम किया। संयम करते हुए प्रातःकालीन वह प्रभु का चिन्तन करने लगे, ब्रह्म के गुणों का बखान करने लगे। जब उनके गुणों की प्रतिभा में चले गएं तो उसके पश्चात वह देव पूजा में संलग्न हो गये, वह दर्शनों में चले गये। परिणाम यह हुआ कि कुछ समय के पशचात बाल्य बालिका उनके ही क्रियाकलापों को अपने में अनुसरण करने लगे। वह गृह पवित्र हो गया, स्वर्ग बन गया। इसी प्रकार राजा भी यह स्वीकार करता है कि यह राष्ट्र मेरा गृह है, इसमें ईश्वर के नामों पर रूढ़ि नही रहनी चाहिए। नाना प्रकार के भक्तजन नाना प्रकार की स्वार्थपरता को लेकर जब रूढ़ि में परिवर्तित हो जाते हैं तो यह भक्तजन नही कहलाते। वह रूढ़िवाद राष्ट्र का विनाश कर देता है।

मेरे पुत्र महानन्द जी ने मुझे वर्णन कराया कि यह नाना प्रकार की रूढ़ियाँ राजा के राष्ट्र में नही रहनी चाहिए। एक समय राजा रावण के राष्ट्र में इस प्रकार की समाज में रूढ़ियाँ बनीं, उनके यहाँ का समाज रूढ़िवादी बना, ईश्वर के नाम पर रूढ़ियाँ बनीं। अन्तिम परिणाम यह हुआ कि रूढ़िवाद के कारण लंका में अग्नि प्रदीप्त हो गई, राष्ट्र विनाशता के मार्ग पर चला गया। यदि राजा अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है गृह को स्वर्ग बनाना चाहता है तो उसे विष्णु बनना होगां राजा कौन विष्णु होता है? जो अपने राष्ट्र में प्रजा के सुखार्थ के लिए अपने क्रियाकलापों में विशुद्ध रूप में परिणत हो जाता है। उन्हीं क्रियाकलापों को अनुसरा करने वाला समाज बन जाता है वह समाज रूढ़ियों से ऊर्ध्वा में गति करता हुआ अपने में महान बनता हुआ, राष्ट्र को ऊँचा बना देता है। विष्णु की तो कई और भी अनन्य विवेचना की गई है।

परमात्मा की आराधना

बेटा! हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए वेद के आश्रय को ले करके एक माला को अपने में धारण करें। उस माला को कण्ठ में सजातीय बना लेते हैं। तो कण्ठ सजातीय बन जाता है जैसे पाण्डितव वेद का अध्ययन करता हुआ अपने कण्ठ को सजातीय बनाता है इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी को अपने कण्ठ को सजातीय बनाना चाहिए। उसमें ज्ञान और विवक होना चाहिए, नम्रता होनी चाहिए क्योंकि भक्त यह जानता है कि परमपिता परमात्मा नम्र है तो मुझे भी नम्र होना चाहिए। परमात्मा निरभिमानी है तो मुझे भी निरभिमानी बनना है, परमात्मा अहिंसावादी हैं तो मुझे भी अहिंसावादी बनना है परमात्मा अपरिगृही है इसीलिए मुझे भी अपरिगृहि बनना है हम तभी उस परमपिता परमात्मा के आनन्दमयी स्रोत में प्रवेश कर सकते हैं। यदि हम उसके गुणों को अपने में धारण नही कर सकते हैं तो न हममें विवेक हैं न ज्ञान है केवल अपनी स्वार्थपरता में मृत्यु से घिरे हुए हम सब प्राणी प्रायः अपने में ही अपनेपन को दृष्टिपात करते रहते हैं तो यह अज्ञान है इस अज्ञान को त्यागना है और प्रकाश में आने के लिए हमें तत्पर होना है। हमारा वेदमन्त्र यह कहत है कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए समाजिक पद्धति को ऊँचा बनायें। जब तक बाह्य और आन्तरिक जगत एक सूत्र में नही आते तब तक हम परमपिता परमात्मा को प्राप्त नही हो सकते बहुत पुरातन काल में मेरे पूर्वज इस वाक्य को कहा करते थे।

अनावृष्टि अतिवृष्टि

एक समय अनावृष्टि हो गई, वृष्टि नही हो रही थी, उसके पश्चात अतिवृष्टि हो गई। प्रजा में त्राहि त्राहि हो गई, समाज का सर्वत्र द्रव्य नष्ट हो गया। कुछ ऋषि मुनियों का समाज एकत्रित था और प्रजाओं ने कहा कि महाराज! यह अतिवृष्टि क्यों हो रही है। ऋषियों ने कहा कि अतिवृष्टि के मूल मे सबसे प्रथम राष्ट्र होता है। राष्ट्र अपने में उन क्रियाकलापों में परितण नही हो रहा है जिन क्रियाकलापों से प्रकृति उसके संकल्प में निहित हो जाएं। क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में महानतव होता है यह जो राजा अपनी प्रजा के लिए सुखार्थ होता है तो इस

क्रमबद्ध सृष्टि के ऐसे अव्यव हैं जो राष्ट्र के संकल्प में होते हैं। राष्ट्र अमोह हो करके जिसकी प्रार्थना करता है तो वही क्रियाकलाप उस वायुमण्डल में प्रवेश हो जाते है। जैसे एक महापुरूष एक स्थली पर रहता है, वह याग कर रहा है, प्रभु का चिन्तन कर रहा है, गायत्राणी छन्दों का पठन पाठन कर रहा है, वह अपने में रत्त हो रहा है और उस स्थली पर कोई भी प्राणी जाता है तो उसकी मनोवृत्तियाँ वहाँ स्थिर होने लगती हैं वह जो मनन की तरंगें हैं, वह स्थिर होनी प्रारम्भ हो जाती हैं वह यह जानता है कि यहाँ कोई महापुरूष रहता है यह महापुरूष का स्थान रहा है।

जब इस प्रकार की विचारधारा, परमाणुवाद की तरंगें राजा के राष्ट्र में होती हैं तो सबसे प्रथम उसके मूल में राजा है उसके पश्चात प्रजा है। जब प्रजा में संगठन और एक विचार नही रह पात, ईश्वर को नाना रूपों में दृष्टिपात करने वाले उनका एकोकीकरण एकान्त स्थली पर विद्यमान होकर नहीं कर पोते तो उसमें द्रव्य बलवतीहो जाता है अज्ञान सा आ जाता है। ऋषियों ने कहा कि यह भी वृथा है जब प्रजा के पाप बलवती हो जाते हैं पाप वृत्तियों में रत्त हो जाते हैं तो वायुमण्डल अशुद्ध हो जाता है वायुमण्डल अशुद्ध होने पर या तो अतिवृष्टि होती है या अनावृष्टि होती है। जब अतिवृष्टि का मूल विद्यमान है तो यह कैसे न हो। प्रजा ने अपना एक सुगठित विचार बनाया और ऋषियों के द्वार पर पंहुचे। ऋषियों ने कहा कि महाराज! तुम तपस्वीजन हो, हमें निर्णय दो कि यह अतिवृष्टि अनावृष्टि क्यों हुई? पहले अनावृष्टि हुई और फिर अतिवृष्टि हुई। हमारा सर्वत्र विनाश हो गया। भगवन्! इसके मूल में क्या है? उन्होंने कहा कि हे प्रजाओं यह तो हम जानते नहीं परन्तु यह हम जानते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रजा के पापों का मूल कहलाता है।

सब ऋषि मुनि प्रजापति के द्वार पर पंहुचे और प्रजापति से कहा कि हे प्रजापति! अतिवृष्टि हो गई है, इसके मूल में क्या है? प्रजापति ने कहा कि निर्णय करो यह वृष्टि कहाँ से हुई है? उन्होंने कहा कि यह वृष्टि मेघमण्डलों से हुई है। वह मेघमण्डलों के द्वार पर पंहुचे तो प्रजापति ने मेघों से यह प्रश्न किया कि तुमने अतिवृष्टि क्यों की हैं उन्होंने कहा प्रभु! इसमें हमारा कोई दोष नही हैं इस अति वृष्टि के मूल में तो इन्द्र है। और शचि है तब इन्द्र और शचि को निमन्त्रित किया और कहा कि तुमने बिना समय के मेघमण्डलों को इतना तेज क्यां दिया जो अतिवृष्टि हो गई, प्रजा विनाश कोचली गई? उन्होंने कहा कि प्रभु! इमसें हमारा कोई दोष नही हैं हमसे तो भगवन! इस सूर्य ने कहा था आदित्य ने कहा था अब आदित्य को निमन्त्रित किया और आदित्य से यह प्रार्थना की कि हे आदित्य! तुमने बिना समय के इतना तेजोमयी क्यों दिया जो बिना समय के वृष्टि हुई, इसके मूल में क्या है? उन्होंने कहा कि हे प्रभु! यह व्रतम् ब्रह्माः कृतं वृहे, इसमें मेरा कोई दोष नही हैं। मेरे से तो इस पृथ्वी वसुन्धना ने कहा था अब पृथ्वी वसुन्धरा को निमन्त्रित किया और कहा कि हे वसुन्धरा! यह तुमने बिना समय के वृष्टि क्यों कराई? वसुन्धरा ने कहा कि प्रभु! इसमें मेरा कोई दोष नही हैं मेरे पर तो इस प्रजा के पाप जब विशेष बलवती हो जाते हैं मैं पापो से सन जाती हूँ तो उसी काल मैं आदित्य से प्रार्थना करती हूँ आदित्य तेज देते हैं तेज से जल का उत्थान होता है, मेघों से उत्पति होती है। इन्द्र इस वायु को कहते हैं और शचि विद्युत उनकी पत्नी है, दोनो का जब संघर्ष होता है तो मेघमण्डलों से वृष्टि प्रारम्भ होती है और प्रजा का विनाश हो जाता है। प्रजा ने जैसे कर्म किए हैं वैसा ही प्रजा अपने कर्मों को भोग लेती है।

परिणाम क्या कि यह आलांकारिक वार्त्ताएं हैं आलांकारिक इसीलिए कि परमात्मा के राष्ट्र मे एक दूसरे प्राणी को सुगठित रहना चाहिए, एक दसूरे प्राणी में प्राणित्व रहाना चाहिए। जिससे उनकी क्रोधाग्नि या उनकी द्वेषाग्नि शान्त रहे। यह सब राष्ट्रीयता की वृत्तियाँ कहलाती हैं । मेरे पुत्रों! विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए, हम यह विचारते चले जाएं कि परमात्मा के राष्ट्र में तो प्रकाश ही प्रकाश रहता है वहाँ

अतिवृष्टि अनावृष्टि कामूल नही बन पाता। परन्तु जहाँ विभक्त विद्या रही हैं विचारों की द्वेषाग्नि की वृत्तियों में प्रजा रत्त हो जाती है, राष्ट्र में स्वार्थपरता रहती है उस समय प्रकृति, प्राणी या राष्ट्र की सहयोगी नही बन पाती। मैंने पूर्व से कहा था कि यह ब्रह्माण्ड एक दूसरे में पिरोया हुआ दृष्टिपात आता है कहीं पापों ससे पिराया हुआ वायुमण्डल है और कहीं तेजोमयी पापों से पिरोया हुआ है इसमें अतिवृष्टि अनावृष्टि का मूल बन जाता है।

विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में आए हैं, परमात्मा के राष्ट्र में एक दूसरे में पिरोया हुआ यह जगत हमें दृष्टिपात आता है जैसे वेदमन्त्र में एक शब्द दूसरे शब्द में पिरोया हुआ है, वाक्य, वाक्य में पिरोया हुआ है। उसकी रचना मानव के अन्तःकरण में रहती है। अन्तःकरण वाक्यों में पिरोया हुआ है। इसी प्रकार जब तक इस जगत को एक दूसरे में पिरोया हुआ हम स्वीकार नही करेंगें, तब तक हमारे मानवत्व का कल्याण नही होगा। हम एक दूसरे में प्रतिभा और परमात्मा का ही दर्शन करें। यह है बेटा! आज का वाक्, अब वेदों का पाठ होगा और इसके पश्चात वार्त्ता समाप्त।

३ विष्णु ०१ ०८ १९८७

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है प्रत्येक वेदमन्त्र उसकी प्रतिभा का वर्णन करता रहा है प्रत्येक वेदमन्त्र में ज्ञान और उसकी प्रतिभा का वर्णन करता रहता है। प्रत्येक वेदमन्त्र में ज्ञान और विज्ञान हैं, उसमें यौगिकवाद है जिसके लिए मानव परम्परागतों से अन्वेषण करता रहा है योगाचार्यों का यह मन्तव्य रहा है कि जहाँ से हमारा विच्छेद हुआ है अथवा विभाजन हुआ है, उसी में हम समाहित हो जाएं अथवा उसी में हम अपने को रत्त करें, हमारा दोनों का समन्वय हो जाएं। इसीलिए प्रत्येक मानव यौगिकवाद की चर्चा कर रहा है और यह चाहता है कि मैं योगेश्वर बन जाऊं। मानव की जो प्रवृत्तियां अनुशासन में थी परन्तु अनुशासन से जब इसका विच्छेद हो जाता है तो यह चाहता है कि मैं अनुशासन में पुनः से प्रवेश हो जाऊं और मैं अनुशासित हो जाऊं।

यह मानव की मनोवृत्तियाँ रही हैं कि जिससे मानव का विच्छेद होता है, वह उसी को प्राप्त होना चाहता है। राष्ट्रवाद से मानव दूर चला गया है तो वह अपने राष्ट्र में परिणत करना चाहता है। राष्ट्रवाद भी एक अनुशासन हैं। मनोवृत्तियाँ भिन्न भिन्न प्रकार की होने से वह विष्णु बनना चाहता है। हे विष्णु! तू ध्रुवा में रहता है। ध्रुवा में पालन करने वाला है जैसे माता के गर्भ में हम जैसे पुत्रों! का जन्म होता है तो माता की गति ध्रुवा हो जाती हे ध्रुवा का अभिप्रायः यह है कि नम्र हो जाती है क्योंकि उसमें पालन करने की क्षमता आ जाती हे इसीलिए प्रत्येक मानव को ध्रुवा में गति करना है जैसे वेद का पठन पाठन करने वाला, वेद के मर्म को जानने वाला ज्ञान में प्रवेश करता है जब एक एक वस्तु को जानता हुआ दूरी चला जाता है तो वह भी ध्रुवा बन जाता है इसीलिए मानव को संसार में ध्रुवा रहना है और विष्णु बनना है। प्रत्येक अनुशासनवेत्ता इन्द्रियों पर अनुशासन करना चाहता है जब इन्द्रियों पर अनुशासन हो जाता है तो बाह्य जगत और आन्तरिक जगत एक दूसरे में समावेश हो जाते है।

बेटा! आज मैं तुम्हें एक ऐसी सभा में ले जाना चाहता हूँ जहाँ विष्णु शब्द पर बड़ी विवेचना और टिप्पणियां होती रही हैं अनुशासन के ऊपर ऋषि मुनियों और ब्रह्मचारियों का बड़ा बल रहा है महर्षि याज्ञवल्क्य मनि महाराज का विद्यालय मुझे स्मरण आता रहता है ब्रह्मचारी अपने तपों में अनुशासित हो रहे हैं याग में अपने को समाहित कर रहे हैं। अयोध्या के भगवान राम और लक्ष्मण इत्यादि सब विद्या अध्ययन करते ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते, अपने में रत्त रहते थे, आचार्यों के समीप रहकर बड़ा गम्भीर मनन करते थे। आज मैं तुम्हें उस गम्भीरता में प्रवेश कराना चाहता हूँ। बेटा! मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जिस काल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ वह बाल्यकाल में अध्ययन करते रहते। नाना ब्रह्मचारी भोज के समय ऋषि के आश्रम में एक पंक्ति में विद्यमान हो कर भोज का पान कर रहे हैं। एक समय महर्षि श्वेतकेतु महाराज के पुत्र शोभनि ब्रह्मचारी को शंका उत्पन्न हुई। प्रातःकाल का समय था, याग के पश्चात उन्होंने एक प्रश्न किया कि महाराज! हम सब बाल्य एक पंक्ति में विद्यमान होकर भोज का पान करते हैं राम मा जीवन राष्ट्रीयता से पनपा है और हमारा जीवन के आँगन में, भयंकर वनों में पनपा है वनो मे हमारी वृत्तियाँ निहित रही हैं हम यह जानना चाहते हैं कि प्रभु! हम दोनों का समावेश कैसे हो सकता है? राष्ट्रीयता है और एक वनचर है, दोनों का समावेश कैसे हो सकता है।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज न कहा कि हे ब्रह्मचारी! राष्ट्रवाद और वनचर यह दोनों एक ही तुल्य हैं क्योंकि राष्ट्रवादी भी यह चाहता है कि मेरे राष्ट्र में अनुशासन हो जाएं और वनामें में रहने वाला ऋषि मुनि भी यह चाहता

है कि साम्राज्य पवित्र हो जाएं दोनों का मन्तव्य एक ही रहता है कि वह अपने मानवीय जीवन पर, मानवीय इन्द्रियों पर जय चाहता है। ब्रह्माण्ड रूपी जो राष्ट्र है इसमें अपना अनुशासन तभी कर सकता हूँ जब मेरी प्रत्येक इन्द्रियाँ अनुशासित हो जाएं और राजा भी यही चाहता है कि मेरा राष्ट्र पवित्र बने। यदि वह अपने पर अनुशासन करने लगता है और चाहता है कि मेरा इन्द्रियों पर अनुशासन हो और इस प्रजा का कुछ दे सकूं, प्रजा का शान्ति की धारा प्रदान कर सकूं। दोनों का मन्तव्य एक है और इन दोनों का एकोकीकरण हो जाता है।

बेटा! वशिष्ठ मुनि ने जब ऐसा कहा तो बाल्य ने कहा कि प्रभु! क्या इसका कोई प्रमाण है? उन्होंने कहा अनुशासन तो अपने में स्वतः ही प्रमाण कहा जाता है ब्रह्मचारी कहते ही उसे है जो अनुशासन में रतहा है ब्रह्मचारी मृत्यु से पार हो जाता है वह मृत्युंजय बन जाता है ब्रह्मचारी और आचार्य दोनों काएक ही मन्तव्य रहता है आचार्य चाहता है कि मेरा ब्रह्मचारी संसार में ऊर्ध्वा को प्राप्त होता रहे। आचार्य और ब्रह्मचारी दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं। आचार्य और ब्रह्मचारी दोनों एक स्थली पर विद्यमान हैं, एक का स्थान ऊर्ध्वा में हैं और एक का ध्रुवा में, चरणों में हैं। क्योंकि ध्रुवा वाले को ऊर्ध्वा में बनना है इसीलिए ब्रह्मचारी आचार्य के चरणों में विद्यमान होता है जब आचार्य शिक्षा देना प्रारम्भ करता है तो वह कहता है कि तुम अनुशासति रहो।

एक समय शोभनि और भगवान राम को प्रातःकालीन एक वेदमन्त्र का अध्ययन कराया। वेदमन्त्र था विष्णु व्रतं देवम् ब्रह्माः विष्णु रेवकृतं ब्रह्माः वाचः सर्वम् ब्रह्मः अन्तरिक्षम् लोकाम वाचचो सम्भवा इस वेदमन्त्र का उन्होंने उच्चारण किया और कहा कि जाओ, इसका अध्ययन करो, इसको कण्ठस्थ करो और कण्ठस्थ करके इसके भावार्थ रूप को जानने का प्रयास करो। शोभनि ब्रह्मचारी और भगवान राम दोनों एक स्थली पर विद्यमान होकर इसका अध्ययन करने लगे। कहीं विष्णु का अर्थ ध्रुवा था, कहीं आत्मवासी कहा जा रहा था, कहीं वहीं विष्णु राष्ट्रीयता में राजा बन रहा था, कहीं ऊर्ध्वा में जाने वाले लोक लोकान्तरों में विष्णु की विवेचना हो रही थी, कहीं ध्रुवा में विष्णु की विवेचना आ रही थी। वह विचार विनिमय करते रहे, दिवस समय समाप्त हो गया परन्तु वह अपने में निमटारा नही कर सके तो मध्य रात्रि में दोनों ब्रह्मचारी आचार्य के चरणों में विद्यमान हो गये। ऋषिवर निद्रा में तल्लीन थे। दोनों उसी वेदमन्त्र के ऊपर अध्ययन चिन्तन मनन करते रहे।

कुछ समय के पश्चात महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज जागरूक हो गये। महर्षि वशिष्ठ मुनि ने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! मध्य रात्रि में तुम्हारा मेरे कक्ष में आने का मन्तव्य क्या है? उन्होंने कहा कि हे प्रभु! हम इसीलिए आए हैं कि यह जो आपने हमें वेदमन्त्र वर्णन कराया है, इसके पठन पाठन की शैली बड़ी विचित्र है। हम इसके अन्तिम छोर पर नही पंहुच सकें हैं क्योंकि कहीं तो यह वेदमन्त्र राजा का वाची विष्णु उच्चारण कर रहा है कहीं पालन करने वाला ही यह विष्णु है कहीं विष्णु सूर्य का कहा जा रहा है, कहीं आत्मा का वाची विष्णु कहलाता है। हे प्रभु! कहीं राष्ट्रवाद ही विष्णु हैं कहीं यज्ञोमयी विष्णु है। कहीं यही विष्णु हमें विज्ञान में ले जाता है इसके ऊर्ध्वा स्वरूप को हम अच्छी प्रकार नही जाने पाए। इसका हमें वर्णन कराइये।

अनुशासन का वाची विष्णु

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने राम और शोभनि ब्रह्मचारी से यह वाक्य श्रवण करके कहा कि यह विष्णु शब्द जब अनुशासन का वाची बनता है तो इस शरीर में विद्यमान होने वाली जो एक चेतना है, एक आत्मा है, यह आत्मा का विष्णु कहलाता है। यह आत्मा विष्णु रूप में विद्यमान है। विष्णु नाम आत्म का इसीलिए वाची है क्योंकि वेदों का अध्ययन करता हुआ वह मान विष्णु रूप को जान लेता है वेद में एक और मन्त्र कहता है विष्णु ब्रह्म वर्चाः ब्रह्मम् वर्चम ब्रह्मेः कमल कृत्यं वृही उत्तम लोकाम् कि यह आत्मा अनुशासन में होता हुआ वेद का अध्ययन करते हुए ब्रह्मा की उपाधि को प्राप्त कर लेता है जब याग होते हैं तो वेद का पठन पाठन करने वाले को

ब्रह्मा की उपाधि प्रदान की जाती है। वह वेद के मर्म को जानने वाला ब्रह्मवर्चोसि कहलाता है।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने एक वाक्य और कहा कि वहीं आत्मा जब विष्णु पद को प्राप्त करना चाहता है तो योगाभ्यास करता है यह कुम्भक में ब्रह्मे व्रतम देवाः जब अपनी वृत्तियों को जागरूक बनाना चाहता है तो यह प्राण को मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र में ले जाता है। नाभि चक्र में जब यह विद्यमान होता है तो नाभि का ऐसा स्वरूप बन जाता है जैसा कमलस्यम् ब्रह्मास कमलम् वृहे व्रतं देवाः वेद की आख्यिका यह कहती है कि जैसे कमल का पुष्प् होता है उसी की भांति उसका स्वरूप बनता है मनस्तव प्राणत्व और आत्मतव जब इसके ऊपर वृत्तियों में परिणत होते हैं जो वहाँ एक गति उत्पन्न हो जाती है तो यह कहते हैं कि उस कमल में से ब्रह्मा का या वेद की जो धाराये हैं उनका जन्म होता है जन्म हो करके ब्रह्मणसम् ब्रेह व्रतम् वह विष्णु बन करके ब्रह्मा बन करके वही आत्मा अपने में ब्रह्म पद को प्राप्त करके वेदों मे मर्म को और नाभ्यमाय योग के कर्म को जानने लगता है।

बेटा! यह वाक्या जब उन्होंने वर्णन किया तो भगवान राम ने उपस्थित हो कर कहा कि हे प्रभु! क्या नाभि केन्द्र में कमल डण्डी का उत्पन्न हो जाता है वशिष्ठ मुनि ने कहा कि हां ऐसा वेद की कुछ आख्यिका स्वीकार करती हैं राम बोले कि प्रभु! नाभि में कमल का होना किसलिए अनिवार्य है? उन्होंने कहा कि यह नाभयाम् हमारे इस शरीर का मध्य भाग कहलाता है। कमल डण्डी के मध्य में ही नाना पंखुड़ियां अपनी अपनी स्थलियों पर ऐसे वृत्तित हो जाती हैं जैसे नाभि में प्राण का स्थिर रहना और मन की पुट लगाना, यह दोनों एक ही तुल्य कहलाती हैं योगाभ्यास सम्वृहे, यही तो पराकाष्ठा वाला अनुशासन है जिसको करने से मानव आत्मपद को प्राप्त होता है, आत्मा को साक्षात्कार कर लेता है और अपने में अपनी प्रतिभा का दर्शन करता है।

विष्णु राष्ट्र

राम बोले कि हे भगवन! दूसरा विष्णु वाची जो राष्ट्र है, मुझे इसका कुछ वर्णन कराईए। महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि राजा जब अपने राष्ट्र में स्थिर होता है तो नाना ऋषि मुनि ब्राह्मणजन, ब्रह्मवेत्ता उसको राजा की चुनौती प्रदान करते हैं जिस समय बुद्धिमानों के द्वारा बुद्धिजीवी योगियों के द्वारा, निष्पक्ष प्राणियों के द्वारा राष्ट्र का निर्माण होता है तो वह राजा महान और पवित्र कहलाता हैं वह राजा चार प्रकार के नियम प्रजा से सुख और आनन्द के लिए निर्माण करता है। चार प्रकार की नियमावाली स्वतः चार भुज कहलाते हैं, राजा रूपी विष्णु के चार प्रकार के भुज कहलाते हैं। जब राजा दशरथ का निर्वाचन हुआ था तो महर्षि वशिष्ठ, महर्षि कपिल, महर्षि वैशम्पायन और महाराजा श्वि श्वेती, देवर्षि नारद महर्षि श्रृंगी आदि ऋषियों ने राजा का निर्वाचन किया था यह सप्त होता कहलाते है।

यह सात ऋषि तो वास्तव में राजा का निर्माण करते हैं वह ब्रह्मवेत्ता होते हैं और यज जानते हैं कि ब्रह्मवेत्ता ही राजा की प्रतिभा का जन्म देते हैं वह कहते हैं कि हे राजा! तुझे ब्रह्मवेत्ता बनना है क्योंकि ब्रह्मवेत्ता ही राष्ट्र का पालन कर सकता है, राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है, प्रजा को ज्ञान दे सकताहै और अपने में अपनेपन को प्राप्त होता हुआ वह ओजस्वी बन करके राष्ट्रीयता में ओज और तेज की स्थापना करता है महर्षि वशिष्ठ मुनि ने कहा कि हे राम! प्रथमवाची विष्णु आत्मा को कहा जाता है और दूसरा वाची विष्णु राजा को कहा जाता है राजा की चार प्रकार की नियमावाली होती है। इन नियमावालियों का नाम विष्णु के चार भुज कहलाते हैं पदम् राजा का सबसे प्रथम नियम है। द्वितीय नियम है द्वितीय नियम गदा कहलाता है, तृतीय चक्र है और चतुर्थ शंख कहा जाता है। यह चार वाला विष्णु कहलाता है।

पदम

महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्मचारियों को एक पंक्ति में विद्यमान करके विष्णु के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा कि

पदम् अकतम् ब्रह्मः हमारे यहाँ चरित्र और मानवीयता को पदम कहते हैं राजा के राष्ट्र में इतना भव्य चरित्र होना चाहिए जिससे मेरी पुत्री राष्ट्र के एक छोर तक चली जाएं, सर्वत्र राष्ट्र में भ्रमण करे तो उसे माता, पुत्री और भौजाई की दृष्टि से अवगत कराने वाला समाज होना चाहिए। इसी प्रकार वह कन्य भी राष्ट्र की माता बन कर ही भ्रमण करे। इस प्रकार का ज्ञान विवेक राजा के राष्ट्र में होना चाहिए। हे ब्रह्मचारियों! सबसे प्रथम राजा के यहाँ पदम् होना चाहिए, पदम् कहते हैं जहाँ प्रत्येक दर्शन की चर्चा करने वाला हो। विचारों की पंखुड़ियां बना करके नाना प्रकार की ऊँची ऊँची उड़ान उड़ने वाला समाज होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में इसी पदम के आधार पर विज्ञान होना चाहिए। भौतिक विज्ञान बड़ा अनूठा है क्योंकि पृथ्वी के गर्भ को जानना, अन्तरिक्ष के गर्भ को जानना, दिशाओं के सर्वत्र रूप को जानने का नाम विज्ञान कहा जाता है। यह विज्ञान केवल पदम् वृत्तियों में आता है।

गदा

वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि विष्णु के राजा के द्वितीय भुज में गदा होनी चाहिए। गदा का अभिप्रायः है कि राजा के राष्ट्र में दण्ड व्यवस्था बड़ी विचित्र होनी चाहिए। उसे सबसे प्रथम ज्ञान के द्वारा शिक्षा देनी चाहिए। यदि वह ज्ञान से भी उपराम होता है तो और उसको स्वीकार नही कर रहा है तो राजा के यहाँ दण्ड व्यवस्था रूपी गदा से उसे दण्डित करना चाहिए। वह दण्डित करना मानो प्रजा को अनुशासन में लाना है। वेद का आचार्य कहता है धर्मज्ञ गतम् ब्रहे राष्ट्र दा मंगल वृत्ति व्रतः देवाः कि समाज में एक दूसरे को भय की प्रतीति नही होनी चाहिए। उनमें सदैव निर्भयता रहनी चाहिए निर्भयता जब रहती है जब मानव ईश्वरवादी होता है, परमपिता परमात्मा को अपना साक्षा बनाता है वही संसार में निर्भयता की आभा में रत्त रहता है। वह निसंकोच भ्रमण करत है पापाचार नही करता है। वह अपने शरीर रूपी राष्ट्र का निमा्रण करता है और बाह्य जगत में दोनों का समन्वय जो करना जानता है वह गदा का अधिकारी है वह पापाचारियों को दण्ड देने वाला हो यह गदा का अभिप्राय है।

चक्र

वेद का ऋषि ने कहा कि तृतीय भुज में चक्र आता है मानवीयता अथवा उसकी वाणी में जो तेजस्व है उसको हमारे यहाँ चक्र कहा जाता है। जब हमाराज चरित्र कमल की प्रतिभा के समान अपने में परिणत रहेगा। तो उसके पश्चात मानव चक्र को अपनाता है संस्कृति के प्रसार करने के चक्र कहते हैं जिस संस्कृति में विज्ञान हो, मानव दर्शन हो, याग की प्रतिभा हो, वही राष्ट्र का उत्थान कर देती हैं वह संस्कृति जिसमें मानवता हो, चरित्र हो जिसमें अश्लीलता न हो उसका नाम हमारे यहाँ चक्र कहा जाता है।

मेरे प्यारे! चक्र कई प्रकार के होते हैं। एक सुदर्शन चक्र भी होता है वह द्वापर के काल में भी था, राम के में भी था यह एक यन्त्र बन कर रहा, वैज्ञानिकों के कुल में उसकी प्रतिष्ठा रही है विष्णु चक्र का अभिप्रायः केवल राजा संस्कृति का चयन है उनका आत्म तत्त्व से समन्वय होना चाहिए, जिससे द्वितीय राष्ट्र उसको अपनाता हुआ निसंकोच अपने में अपनेपन को प्राप्त करता चला जाएं। संसार में राजा के राष्ट्र में चरित्र हो क्योंकि राजा विष्णु है और विष्णु उसे कहते हैं जिस राजा के राष्ट्र में चरित्र या पदम्, गदा और चक्र होता है। संस्कृति का प्रभाव अपने मं विचित्र माना गया है।

शंख

हमारे यहाँ विष्णु के चतुर्थ भुज में शंख माना गया है वेद ध्वनि को शंख कहते हैं। ध्वनित करने वाले बुद्धिजीवी पुरूष राज्य में होने चाहिए। विद्यालयों में आचार्यजन द्वारा ब्रह्मचारीजन को अध्ययन कराने की विचित्र शैली रहनी चाहिए। उनकी शैली में एक महानता का दर्शन होना चाहिए। मानव उस शंख को अपनाता है, ध्वनि को अपनाता है। नाद को शंख कहते हैं शंख जब अपने में ध्वनित होता है तो वह नाना प्रकार के दूषित वायुमण्डल को

समाप्त करना प्रारम्भ कर देता है, मुझे वह काल स्मरण आता है जब भगवान राम के काल में, अयोध्या के आँगन में संसार अपनी अपनी आभा में सदैव निहित रहा है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने वेदमन्त्र का उद्घोष करते हुए कहा कि राजा के राष्ट्र में शंख ध्वनि होनी चाहिए। शंख ध्वनि का अभिप्रायः यह कि यहाँ ऐसा ऐसा पाडित्व होना चाहिए जो नाना प्रकार का गान गाने वाला हो। जैसे जटा पाठ है घन पाठ है माला पाठ है विसर्ग पाठ है, उदात्त और अनुदात्त है नाना प्रकार की वेदमन्त्रों की ध्वनियों में ध्वनित होता हुआ मानव स्वर संगम में प्रवेश कर जाता है।

वेद गान

वेद के पठन पाठन करने वाला बुद्धिजीवी प्रणी जब एकान्त स्थली पर विद्यमान होकर गान गाता है तो उदान से प्राण को समान में लाता है और उसी प्राण को जब अपान से समन्वय करता है, अपान का जब व्यान से समन्वय करता है तो जब हृदय से गाता है तो हिंसक प्राणी भी अंहिसा में परिवर्तित हो जाता है राष्ट्र में प्रणी को तो क्या हिंसा करता है अरे, हिसंक प्राणी भी अहिंसा में परिवर्तित हो जाता है जब राज यह विचारता है कि मेरे राष्ट्र में बुद्धिजीवी पुरूष होने चाहिए, बुद्धिमान होने चाहिए जिससे मेरा राष्ट्र ध्वनित हो जाएं तो वेदमन्त्रों की ध्वनि अग्नि की धाराओं पर विद्यमान होकर अन्तरिक्ष में ओत प्रोत हो जाती है। आगे महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि राजा के राष्ट्र में जितना बुद्धिजीवी प्राणी होगा उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा, जितने राजा के राष्ट्र में तपस्वी प्राणी होंगें, वेद का गान गाने वाले तपस्वी होंगें, योगेश्वर होंगें उतना ही राष्ट्र पवित्र होगा। मेरी पुत्रियां, मेरी माताएं विदुषी बनकर उनके गर्भ से ऊर्ध्वा में सन्तान को जन्म होगा।

गान और राग

वशिष्ठ मुनि महाराज अपना वाक् प्रगट करके जब मोन होने लगे तो शोभनी ब्रह्मचारी ने कहा कि प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि शंख ध्वनि का केवल आपका वही मन्तव्य है कि राजा के राष्ट्र में गान गाने वाले हों? गान कितने प्रकार के होते हैं ऋषि ने वेद का मन्त्र उच्चारण करते हुए वर्णन किया कि गन्धर्वगानम् ब्रहे वाचम् ब्रह्मः दीवस्तम ब्रह्मे वाचः जलम् व्रताम् देवम् ब्रह्मः ऋषि ने कहा कि गान गाने वाले कई प्रकार के होते हैं एक गान गाने वाला जब उदान प्राण को वृत करके गान गाता है तो वह दीपावली गान में परिवर्तित हो जाता है। वही जब शीतली प्राणायाम करके प्राण, अपान और उदान तीनों का समन्वय करके गान गाता है तो वह मल्हार वृत्ति राग बन जाता है रागों की बड़ी बड़ी प्रतिभायें मानी गई हैं एक गान वह होता है जो यज्ञशाला में विद्यमान है अपनी स्वर वृत्तियाँ और नाभि का स्वर, इन दोनों का मिलान करता मानव के स्वरों में गाता है तो गान की प्रतिभा विचित्र बन जाती है।

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि राजा के राष्ट्र में जब इस प्रकार के विचारक पुरूष होते हैं तो इस प्रकार के गान गाने वाले होते हैं तो शंख ध्वनि पवित्र बन जाती हे और ध्वनित होता हुआ प्राणी उसमें लय हो जाता है । उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ बहुत से ऐसे राजा हुए हैं जिनके राष्ट्र में गान विद्या बड़ी विचित्र रही हैं शोभनि ब्रह्मचारी ने कहा कि हे प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ कौन सा ऐसा राजा हुआ है कि जिसके गान और राग की प्रतिभा रही है? उन्होंने कहा कि पुष्कर के राज्य में प्रायः मल्हार राग और दीपावली गान गाने की बड़ी विचित्रता रही है। उस विचित्रता में प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में ला कर जग गान गाया जाता है तो दोनों एक दूसरे के पूरक बन करके अनहाद मस्तिष्क में अग्नि का जब संचार होता है तो दीपक अपने में प्रकाशित हो जाते हैं। जैसे विज्ञानवेत्ता अन्तरिक्ष में से अग्नि और जल के परमाणुओं को निकाल लेता है तो और उन दोनों प्रकार के परमाणुओं से भिन्न भिन्न प्रकार के यन्त्रों का निर्माण कर लेता है, इसी प्रकार मानव भी इस प्राण के द्वारा नाना

प्रकार की गान विद्या की वृत्तियों को अपने में प्राप्त कर लेता है। जब ऋषि ने यह वर्णन करया तो राम और शोभनि ब्रह्मचारी बड़े प्रसन्न हुए। ब्रह्मचारियों और आचार्यों ने उनकी बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा कि प्रभु! धन्य है।

मेरे प्यारे! विचा यह कि हमें विष्णु राष्ट्र बनाना है, विष्णु राष्ट्र की स्थापना करनी हैं जो राष्ट्र अपने को विष्णु राष्ट्र बनाना चाहता है उसे चार प्रकार के नियम बनाने होंगें सबसे प्रथम पदम् जो चरित्र का प्रतीक है उसके पश्चात गदा जो दण्ड का प्रतीक कहलाता है, तृतीय चक्र हे जो संस्कृति का और मानव दर्शन की स्थापना करता है और चतुर्थ में शंखध्वनि नाद होता रहता है नाद गान रूपों में जितना वेद का पठन पाठन इत्यादि में मान प्रतिभाशाली बन रहेगा उतनी उसकी चरित्रता, मानवीयता ऊर्ध्वा में गति करती रहेगी। और इसकसे पश्चात जो वेद के वांगमय में जाने वाले विज्ञानवेत्ता होते हैं उनका विज्ञान भी सार्थक बन जाता है।

वशिष्ठ जी की शिक्षा प्रणाली

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ प्रातःकालीन ब्रह्मविद्या का प्रसार होता, वेदमन्त्रों के ऊपर अध्ययन होता। मध्य दिवस में उनके यहाँ राष्ट्रवाद और मानवीयता, दोनों का एक वृत किया जाता । मध्य दिवस में विज्ञानवेत्ता विज्ञानशाला में विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करते थे। वह क्रियात्मक शिक्षा थी। राम के काल में ऐसे ऐसे यन्त्र महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के विद्यालय में विद्यमान थे जिनमें वह विज्ञानशला में अनुसन्धान करते। महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता, और कवन्धि के सहयोग से उन्होंने एक यन्त्र का निर्माण किया था जिसे अहिल्या प्रतिभा वृत यन्त्र कहते थे पृथ्वी को अहिल्या कहते हैं उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि पृथ्वी के गर्भ में दो दो, तीन तीन योजन के निचले भाग में उनमें चित्र दृष्टिपात आने लगते थे। उन चित्रों को प्रायः क्रिया में लाना, खनिज को जानना, कितनी दूरी पर कौन सा खनिज है, कौन सी सूर्य की किरण कहाँ प्रवेश करके जल को किस प्रकार तपायामान करती है, उसी जल को जब वह अपने में ग्रहण करती है तो वाहनों में किस प्रकार वह जल नृत्य करता रहता है।

माता भी विष्णु है।

मेरे प्यारे! विचार यह कि हमें विष्णु बनना है जिस राजा के राष्ट्र में ज्ञान, विवेक जब चरित्र के द्वारा स्थापित हो जाता है तो राष्ट्र अपनी पराकाष्ठा पर चला जाता है, ऋषि ने जब यह वर्णन कराया तो उन्होंने एक प्रश्न यह कि कि महाराज! यहाँ वेद का वाक्य कहता है कि मातृम् ब्रह्मा विष्णु व्रतम् देवाः हे प्रभु! आपने जो हमें वेद का पठन पाठन कराया यह भी इसमें आया है कि माता का नाम विष्णु है तो माता विष्णु कैसे कहलाती है ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा कि वह माता विष्णु कहलाता है जो अपने कर्तव्य का पालन करती है। यहाँ कर्तव्य किसे कहते हैं? माता को ममता, मोह में परिणत न रहना, अपने कर्तव्य का पालन करना है। जैसे माता के गर्भस्थल में एक शिशु पनप रहा है हम जैसे शिशु पनप रहे है। उस माता का मातृत्व कहलाया जाता हे माता! अपने कर्तव्य को अपनी मानवीयता में ग्रहण करना प्रारम्भ करती है। माता वेदमन्त्रों का उद्गीत गाना प्रारम्भ करती है वेद कि मुझे वेद ने विष्णु कहा है मैं विष्णु कैसे हूँ क्योंकि विष्णु तो पालन करने वाले का नाम कहा जाता है। मैं विष्णु कैसे बन सकती हूँ? वह अपने गर्भस्थ शिशु को शिक्षा देना प्रारम्भ करती हैं

गर्भस्थल की शिक्षा बड़ी विचित्र हे एक वेद का मन्त्र आता है कि मातृम् ब्रह्मः चरणास्तम् विश्वस्यम् ब्रह्म विष्णु आत्मन् ब्रह्मेः मौन वृत्यः विद्या नमः यह वेद का वाक्य कहता है कि माता मौन हो करके संसार का नानाप्रकार का जो बिखरा हुआ जगत है, इस बिखरी हुई प्रवृत्तियों को एकाग्र करती हुई मन को अपनी रसना के ऊपर और निचले भाग में चिन्तन और मनन का एक स्रोत बनाती है यह विचारती है कि हे आत्मा! तेरा गर्भस्थल में प्रवेश हुआ है तू इस संसार में क्या चाहता है जब वह उच्चारण नही करता तो माता अपनी उपासना करना प्रारम्भ करती हैं। हे आत्मा! तू मेरे गर्भ में इसीलिए आया है कि तुझे संसार में कुछ करना है तुझे योगाभ्यास

करना है। तुझे महान बनना है, विचित्र बनना है, निर्मोही बनना है इस प्रकार विचारों का जब वह नृत्य करना प्रारम्भ करती है तो वह कर्तव्यों का पालन कर रही हे माता! की लोरियों में जब बाल्य आ जाता है तो बाल्य वह प्रीति कर रही है ममता मोह नही कर रही है क्योंकि मोह मानव को दाह में पहुंचाने वाला है जो माता प्रीति कर रही है, वह कर्तव्यवाद के मार्ग परले जा रही है।

माता जब कर्तव्य का पालन करते हुए विष्णु रूप को अपने में धारण करती हुई, शिव रूप को धारण करती हुई, सब प्रकार की आभा को धारा करती हुई पालन करती है तो वह विष्णु कहलाती है विष्णु का अभिप्रायः पालन करने वाला है इसीलिए हे माता! तू पालन करने वाली है तू वसुन्धरा है अपने में बसाने वाली है तू धारणी है, अपने में धारण करने वाली हैं माता जब इस प्रकार के वेद के मन्त्रों का चिन्तन करती हुई अपने को ऊँचा बनाती है तो तो बाल्य ऊँचा बनता है। माता उसे ब्रह्मवेत्ता बना देती है, राष्ट्रवेत्ता बना देती है योगेश्वर बना देती है तो वह माता अपने कर्तव्य का पालन कर रही है आज का विचार यह कि हम विष्णा को अपनाते चले जाएं अब वेदों का पठन पाठन होगा।

४ विष्णु में राष्ट्र ०२ ०८ १९८७

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है। उसका ज्ञान और विज्ञान भी अनन्तमयी माना गया है हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तब नाना विज्ञानवेत्ता हुए परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नही हुआ, जो उस परमपिता परमात्मा को सीमाबद्ध कर सके क्योंकि वह सीमा से रहित है, वह सीमा में आने वाले नही हैं क्योंकि वह विज्ञानमयी स्वरूप है विज्ञान उसका गृह है उसका सदन है अथवा उसका आयतन है।

विचार आता है कि परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है, इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते चले जाएं, उसके ज्ञान और विज्ञान को छूने वाले बनें। जैसे कामधेनु के दुग्ध का आहार मान अपने में करने लगता है उसी प्रकार परमात्मा के ज्ञान को हम अपने में भरा करें एकान्त स्थली पर विद्यमान होकर मानव जब उसका मनन चिन्तन करता है तो वह उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान विज्ञान को जानने लगता है तथा परमपिता परमात्मा को एक एक कण में दृष्टिपात करता है मेरे प्यारे! इसी कण कण के सत्य को ले करके हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने, विज्ञानवेत्ताओं ने, जब एक परमाणु का विभाजन किया तो उसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड का चित्र दृष्टिपात आता है इसमें हमें यह सिद्ध होता है कि एक एक परमाणु में ब्रह्माण्ड है। एक एक श्वास की गति में भी वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड गतिवान हो रहा है।

वेद का मन्त्र हमें किस मार्ग पर ले जा रहा है। उसकी प्रतिभा इतनी विचित्र मानी गई है कि जो मानव हृदयगम्य हो करके अपनी हृदय स्थली में प्रभु को ध्यानावस्थित करता है तो वह उसी को प्राप्त होता हुआ परमपिता परमात्मा की महती में रत्त हो जाता है हे अग्नि! तू विष्णु है, कल्याणकारिणी है, मानो तू पालन कर रही हे हे अग्नि! तेजोमयी आभा को चिन्तन में लाते हुए हम विज्ञानवेत्ता बन जाते है। एक काष्ठों में रत्त रहने वालीअग्नि है हे अग्नि! तेरी ही ही तेजोमयी आभा को चिन्तन में लाते हुए हम विज्ञानवेत्ता बन जाते है। एक काष्ठों में रत्त रहने वाली अग्नि है। हे अग्नि! जब तू समुद्रों में प्रदीप्त होती है तो तू भयंकर अग्नि बनकर रही है जिसे बड़वानल अग्नि कहते हैं, और उसकीसे जल प्लावन अपने आते हैं। जब इस अग्नि को मन्दाग्नि कर दिया जाता है तो जलाशय अपने में शान्त हो जाते हैं जल प्लावन नही होता, वह अतिवृष्टि और अनावृष्टि में परिवर्तित हो जाती है। हे अग्नि! तू अनावृष्टि में परिणत होती हुई अपने में तेजोमयी को धारण करती रहती है। हे अग्नि! तू कल्याणमयी इन्द्र बन कर हमारा कल्याण करती है हम इन्द्राग्नि का पूजन करने वाले बनें। हे विष्णु! तू अपने में पूज्य माना गया है।

सूर्य भी विष्णु है।

आओ, मेरे पुत्रों! मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जिस क्षेत्र में शोभनि ब्रह्मचारी और राम एक पंक्ति में विद्यमान होकर ऋषि से प्रश्न कर रहे हैं उन्होंने कहा कि प्रभु! यह तो हमने जान लिया है कि माता नाम भी विष्णु है परन्तु वेद का मन्त्र कहता है कि विष्णुमयां वृतम् सूर्योणि गच्छतम। हे प्रभु! यह जो सूर्य है यह वेद की आख्यिका में विष्णु के रूप को धारण कर रहा है। सूर्य को विष्णु क्यों कहा जाता है? उस समय महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि हे राम! हे ऋषि कुमार! हे ब्रह्मोवर्चा! सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है तो वह अपने प्रकाश को लेकर संसार को प्रकाशित करता है द्यौ से ऊर्जा को बिखेर देता है। यह संसार इसे अपने में ग्रहण करता है सूर्य महान

है, वह अपने में पालन करता है तेजोमयी को अपने में धारण करके संसार को प्रकाशमयी बना देता है, ऊर्ज्वा को प्रकृति तत्त्वों में रत्त कर देता है विष्णु का अभिप्रायः जो पालन करता है तो सूर्य हमारा विष्णु है। विष्णु अपने में महान बना हुआ है।

मेरे प्यारे! विचार आता है कि हे विष्णु! तू सूर्य, अदिति कहलाता है। तू द्यौ से प्रकाश्ज्ञ लेकर पृथ्वी को अद्वित्य में रत्त करा देता है। जब योगीजन तेरी किरणों के साथ अपने जीवन को गतिवान बनाते हैं तो ब्रह्मचारी भी ब्रह्मचर्य और प्राण कीगति के साथ, इन ऊर्ध्वामयी सूर्य की किरणें के साथ में गति करते हैं। हमारे यहाँ नाना प्रकार के विज्ञानवेत्ता हैं जो सूर्य के ऊपर अन्वेषण करने वाले हैं। कोई कोई वैज्ञानिक तो ऐसा हुआ है जो सूर्य ऊर्ज्वा को लेकर यन्त्रों का निर्माण करता है और वह यन्त्र सूर्य और लोक लोकान्तरों की परिक्रमा करने लगता है यह सूर्य अपने में प्रकाशमान, विष्णु है, ऊर्ध्वा में गति कराने वाला है, पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खनिजों को यह परिपक्व बनाता रहता है।

ब्रह्माण्ड का दर्शन

योगीजन अपने में समाधिष्ट हो करके, गुरूतव परमाणु के ऊपर अन्वेषण करते हुए सूर्य की आभा में रत्त हो जाते हैं। योगी सूर्य प्राण को अपनाता है और किरणों के साथ वह पृथ्वी के गर्भ में गमन करता मनस्तव को ले जाता है, प्राणत्व को ले जाता है। गुरूतव में नाना प्रकार का पिपाद बन रहा है अथवा नाना प्रकार के परमाणुओं का आदान प्रदान हो रहा है। योगी उनको अपने में जब दृष्टिपात करने लगता है तो योगेश्वर अपनी बिखरी हुई प्रवृत्तियों को एकत्रित करके समाधिष्ट हो जाता है। वह लघु मस्तिष्क से रेणकेतु मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है। मस्तिष्क में एक सुनितीव्रतासुति नाम की नाड़ी होती है जिसका समन्वय आज्ञा चक्र से होता है, आज्ञा और सूचना विभाग से होता है। उस सुनिती नाम की नाड़ी का समन्वय पुरातत नाम की नाड़ी से हो करे हृदय में एक ऋचि नाम की नाड़ी है, उससे जब समन्वय हो जाता है तो योगी इन नाड़ियों का ब्रह्मरन्ध्र में समन्वय कर लेताहै और वह अन्तर्मुखी बन करे अपने में ब्रह्माण्ड का दर्शन कर लेता है महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि हे राम! यह सूर्य जो विष्णु है, यह प्रकाश को देने वाला है उत्पादन करने वाला है, यही मानव को कन्या याग में देवी याग में प्रेरित कराता है, तो यह सूर्य विष्णु कहलाता है।

अन्तरिक्ष भी विष्णु है।

जब ऋषि ने इस प्रकार का विवेचना की तो वेद का अध्ययन करनेवाले दोनों ब्रह्मचारियों ने कहा कि आपने जो वेदमन्त्र का अध्ययन के लिए दिया उसमें एक वाक्य आया है कि अन्तरिक्षम् ब्रह्मे व्रते देवम् वाचम् लोकाम् वायु सम्भविति, वेद का मन्त्र यह कहता है कि विष्णु लोकों का अधिपति कहलाता है विष्णु इन लोक लोकान्तरों की प्रतिभा में रहता है तो प्रभु! इसे हम कैसे जानें? महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि अन्तरिक्ष को विष्णु कहते हैं क्योंकि यह नाना प्रकार के लोकों का अधिपति कहलाता है यहाँ लोक लोकान्तरों में गति करने वाला एक विष्णु लोक भी होता है जैसे इन्द्र लोक है ऐसे ही एक विष्णु मण्डल है जो नाना लोकों को अपने में धारण किए रहता है।

बेटा! भारद्वाज मुनि से ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी कवन्धि ने हा कि सूर्य का वाणी से क्या समन्वय रहता है? उस समय महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने वेदमन्त्रों को उच्चारा करते हुए कहा कि यह सूर्य नाना पृथ्वियां को अपने में धारण कर रहा है, धारयामि बना रहा है। विष्णु रूप को धारण करते हुए यह सूर्य तीस लाख पृथ्वियों का अधिपति सूर्य कहा गया है। इसी प्रकार जितना भी गुरूतव मण्डल है वह सब सूर्य से सहायता को प्राप्त करता रहता है नाना प्रकार के मण्डलों की आभा में रत्त रहने वाल यह सूर्य कितना विशाल है। वह पालना में रत्त रहता है लोक लोकान्तरों में विष्णु एक मण्डल है जो गन्धर्व और स्वाति के मध्य में स्थिर रहता है, अरूणधती के

अग्रणीय भाग में विद्यमान है। विष्णु मण्डल में नाना प्रकार का विज्ञान भी पनपता रहता है, विज्ञान अपनी आभाओं में रत्त रहता है। ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो राम और शोभनि दोनों मौन हो गये।

मेरे प्यारे! राम का प्रातःकाल का क्रियाकलाप बड़ा विचित्र था प्रातःकालीन अपनी सारी क्रियाओं से निवृत्त होकर अन्तर्मुखी होकर प्रभु में ध्यानावस्थित होना उनका नित्य प्रति का क्रियाकलाप था शोभनि ब्रह्मचारी भी विष्णु की याचना करते हुए वेद का प्रातःकालीन अध्ययन करते थे सर्वत्र ब्रह्मचारी विद्यालय में इसी प्रकार रत्त रहते थे उनके यहाँ एक समय महर्षि भारद्वाज, महर्षि श्वेतकेतु, महर्षि पनपेतु मुनि महाराज का आगमन हुआ। ऋषियों ने ब्रह्मचारियों ने उकन स्वागन किया। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि तुम्हारे विद्यालय में जहाँ विद्या में गति है, संलग्नता है ब्रह्मवर्चोसि है, यह सर्वत्र तो होना चाहिए परन्तु विज्ञान भीतो होना चाहिए। क्योंकि विज्ञान अपने में अनूठा है। उन्होंने कहा बहुत प्रिय।

अहिल्या

मुनिवरों! महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने क्रियात्मक वेदमन्त्रों के आधर पर यह सिद्ध किया कि तुम अहिल्या को जानो। हमारे वैदिक साहित्य में अहिल्या नाम रात्रि को कहते हैं, अहिल्या पृथ्वी का भी है अहिल्या नाम चन्द्रमा की कान्ति को भी कहते हैं परन्तु अहिल्या का अभिप्रायः केवल इतना है कि अहिल्याम् ब्रहे वृचम् प्रवाहः अहिल्यम् वृह्मस्ताहः। अहिल्या ज्ञान और विज्ञान की प्रतीक है। जिससे ज्ञान विज्ञान उपलब्ध होता है उसी का नाम अहिल्या है।

भगवान राम का घ्राण इन्द्रिय पर बड़ा अधिपथ्य रहता था जब इन्द्रियां का एक दूसरे पर अधिपथ्य हो जाता है तो घ्राण इन्द्रियां से पृथ्वी के परमाणुओं की सुगन्धि मिलान करते ुए, उसके खनिज पदार्थों को अथवा उसमें कौन से तत्त्व विद्यमान है। वह उसको जान लेता है। भगवान राम में यह विशेषत थी कि वह पृथ्वी के रजों की सुगन्ध से ही यह निर्णय करलेते थे कि इस पृथ्वी में इतनी दूरी पर इतना खनिज है और इस भूमि पर इतना अन्न उत्पन्न हो सकता है। भगवान राम ने इस विद्या का अध्ययन बाल्यकाल में ही किया था ब्रह्मचारी यज्ञदत, ब्रह्मचारी व्रेतकेतु, शोभनी और राम, यह चारों एकान्त स्थली में एक वेदमन्त्र के ऊपर विचार रहे थे और वेदमन्त्र कह रहा था कि अहिल्यम् वृहे चरणाः सम्भवः व्रते घ्राणाः इन्द्रश्चम् प्रवाह अश्चम् देवः अश्ववति दिव्यः इस वेदमन्त्र का अध्ययन करते हुए यह विचार लिया कि अहिल्या पृथ्वी को कहते है। और अहिल्या का समन्वय घ्राण इन्दियों से रहता है उन्होंने साधना की, ब्रह्मचर्य काल में उन्होंने इस प्रकार का अध्ययन किया और प्रत्येक इन्द्रियां पर जय करते हुए, विजय को प्राप्त होते हुए उन्होंने अपनी घ्राण इन्द्रियों के ऊपर बल दिया।

प्राण शक्ति ऐसी एक सत्ता है जब घ्राण इन्द्रियों में प्राण और अपान दोनों योगी का मिलान करता है तो उसे पृथ्वी की गन्ध से यह प्रतीत हो जाता है कि इस गन्ध में कौन सा खनिज अपनी पुकार कर रहा है, अपनी ध्वनि में ध्वनित हो रहा हैं सब ब्रह्मचारी अपने में इस प्रकार अनुसन्धान करते रहते। ब्रह्मचारियों के मध्य में यह विषय उसी का होता है जिसमें उसके संस्कार, उसकी प्रबलता, एक विशेष बल होता है मुझे ऐसा स्मरण आता है कि वह प्राणायाम भी करते थे। जिसके अन्तःकरण के चित्त में जो भी संस्कार होते थे उसके आधार पर वह विद्या को अपनाने के लिए तत्पर हो जाते थे आचार्य ब्रह्मचारी को जब यह शिक्षा देता है तो दीक्षा में यह निर्णय करा देता है कि वह ब्रह्मचारी किस विद्या का अधिकारी है। वह ब्राह्मण है या क्षत्रिय है या वैश्य प्रवृत्ति का है चारों वर्णों का निर्माण आचार्य किया करता है त्रेता के काल में विद्यालयों में आचार्य वेद के आधार पर निर्णय दिया करते थे।

मेरे प्यारे! एक समय श्वेति मुनि महाराज के पुत्र रिद्धसोमभानु वशिष्ठ मुनि महाराज के आर में अध्ययन कर रहे थे। उनका अध्ययन का माध्यम बड़ा विचित्र था। वेदमन्त्रों का अध्ययन करते उकनी प्रवृत्ति वाणिज्य विद्या पर

उनका अधिपथ्य हो गया। वह कृषि के उद्यम में विशेष थे। आचार्य ने उन्हें वैष्य की उपाधि दी। उन्होंने दीक्षा देते हुए कहा कि तुम ब्राह्मण के बाल्य हो, ऋषि के पुत्र हो, वेद वांगमय में तुम्हारा प्रवेश हुआ है परन्तु वाणिज्य विद्या में तुम्हारी रूचि है तो तुम्हारी प्रवृत्ति वैश्य कुल में जाने योग्य है विचार विनिमय क्या कि आचार्य के हृदय में इतना विद्या का अधिपथ्य होना चाहिए कि आचार्य आयुर्वेद के मर्म को जानने वाला हो, उसमें ब्रह्म विद्या भी हो और यौगिकवाद भी हो, संसार का व्यवहार भी आचार्य के समीप हो। आयुर्वेद के द्वारा वह ब्रह्मचारी के मस्तिष्क को जान ले कि वह कौन सी विद्या का अधिकारी है, वही विद्या का ब्रह्मचारी को प्रदान करे। राष्ट्र में जब इस प्रकार का निर्वाचन होता है तो राष्ट्र में अराजकता नही होती। राष्ट्र में अराजकता उस काल में होती है जब अधिकार अनधिकार को विचारा नही जाता। विद्यालयों में एक ही प्रकार की, वेद की विद्या हो तो राष्ट्र में अन्धकार नही आ सकता।

मैं आज ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मचारियों की पंक्ति में विद्यमान हैं। पंक्ति लग रही है, प्रातःकालीन का समयहै मन्त्रों का उद्गीत गाने के लिए महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने आज्ञा दी कि प्रातःकाल का याग सम्पन्न हुआ है, अब तुम्हारा स्वर गान होना चाहिए। ब्रह्मचारियों ने जब प्रारम्भ किया तो गान स्वर से विद्यालय ऐसे गुंजायमान हो गया जैसे वर्षाकाल में मेघ की गर्जना से अन्तरिक्ष शब्दायमान हो जाता है ब्रह्मचारी अपने में वेदों का गान गाने लगे, अपन सुसज्ञता में रमण करने लगे। ऋषि ने अपना निर्णय देते हुए कहा कि हे ब्रह्मचारियों! जब विद्यालय में तुम्हारा अवकाश होगा, तब तुममें से कोई राजा बनेगा, कोई मन्त्री बनेगा, कोई पाण्डितव बनेंगें परन्तु मेरी एक ही वार्त्ता दृष्टिपात करना है कि तुमने जो विद्यालय में क्रियाकलाप किए हैं, जो अध्ययन किया है वह तुम्हारे से जीवन में दूरी न हो जाएं। तुम्हारा यह क्रियाकलाप रहना चाहिए जिससे यह समाज तुमसे शिक्षा प्राप्त करता हुआ अपने में गान गाने वाला बने।

महाराजा रघु का जन्म

बेटा! इससे पूर्व काल में मैंने शंख ध्वनि के बारे में कहा था शंख ध्वनि का अभिप्रायः यह होता है कि राजा के राष्ट्र में ऊँचे ऊँचे योगेश्वर होने चाहिएं। जिससे राजा का राष्ट्र पवित्र बन जाएं और वह राजा को समय समय पर संकेत देते रहें कि तेरे राष्ट्र में सूक्ष्मवाद नही होना चाहिए। जैसे एक समय की वार्त्ता है दशरथ के यहाँ और दशरथ सू पूर्व महाराजा दिलीप के यहाँ कोई सन्तान नही थी। सन्तान का न होना ही राष्ट्र के लिए बड़ा अशोभीनीय माना गया है। महाराजा दिलीप जी ने अपने मन में विचारा कि मुझे क्या करना है तो ऋषियों ने आज्ञा दी कि तुम तपस्या करो। उन्होंने कहा कि प्रभु! क्या करना है तो ऋषियों ने आज्ञा दी कि तुम तपस्या करो। उन्होंने कहा कि प्रभु! तपस्या कैसी होती है, तपस्या किसे कहते हैं? उन्होंने कहा कि प्रभु! तपस्या कैसी होती है तपस्या किसे कहते हैं, उन्होंने कहा कि इन्द्रियों के ऊपर संयम करने को तपस्या करते हैं। इन्दियों के ऊपर जो संयम करता है वही तपस्वी है इन्द्रियों का मन्थन करते करते जो क्रिया उत्पन्न होती है उसका नाम विवेक कहा गया है। तपस्या का अभिप्रायः यह है कि यह प्रत्येक इन्द्रियों के ऊपर हमारा अधिपथ्य हो, प्रत्येक इन्द्रियों के द्वारा हम संसार के ऊर्ध्वा से ऊर्ध्वा कार्यों के लिए तत्पर हो जाएं। हम उसमें विज्ञान भी दृष्टिपात करें। उसको आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद की क्रियाओं में लाने के लिए हमारा व्यवहार भी विचित्र होना चाहिए।

महाराज दिलीप ने ऋषि मुनियों कीआज्ञा का पालन किया। उन्होंने एक आश्रम बनाया और कामधेनु को भी त्याग दिया। राष्ट्र को मन्त्रियों को समर्पित कर दिया। वह एक नन्दिनी गौ को लेकर भयंकर वन में चले गएं और तपस्या करते रहे। राष्ट्र भी तभी ऊँचा नबता है जब राजा तपस्वी होता है,राजा विवेक होता है। बारह वर्षों तक उन्होंने भयंकर वनों में तप किया। वनों में जो फल फूल प्राप्त होते, उसे उदर का साधन बनाया और ब्रह्मवर्चोसि

बनते हुए, ब्रह्म में रमण करने के पश्चात उन्होंने पुत्रेष्टि गया किया जो महाराज रघु का जन्म हुआ। वह काल जब स्मरण आता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि तपस्या का काल एक बड़ा अनूठा काल होता है।

मनसा पाप का प्रायश्चित

बेटा! मुझे एक वाक्य और स्मरण आ गया हैं एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यमान थें लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, राम, शोभनि ब्रह्मचारी सुकेता, जो विज्ञान में भारद्वाज के शिष्य कहलाते थे, ब्रह्मचारी कवन्धि, रोहणीकेतु और स्वाति, सब एक पंक्ति में विद्यमान होकर अपने में अध्ययन कर रहे थे तो वशिष्ठ ने लक्ष्मण को अनायास ही दण्डित किया। दण्डित इसीलिए किया कि ऋषि के हृदय में एक मनसा पाप की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई तो लक्ष्मण ने वेद के अध्ययन में स्वर और व्यंजन का प्रतिपादन नही किया। उनसे मनसा पाप हुआ परन्तु लक्ष्मण ने उसे क्रियात्मक रूप में साकार रूप में प्रगट किया। कई दिवस हो गएं वह पाठ उन्होंने लक्ष्मण से पुनः उच्चारण करवाया और उससे पूर्व यह कहा कि तुमने इसका अध्ययन किया। लक्ष्मण ने कहा नही भगवन! मैंने किया है। जब वह अध्ययन करवाने लगे तो वेद का पाठ व्यंजनां के सहित था।

रात्रि के काल में वशिष्ठ मुनि महाराज अपनी पत्नी से बोले कि देवी! आज मेरे हृदय में मनसा पाप आया, इसका क्या कारण है? क्या तुमने मुझे कोई अन्नादि तो ऐसा नही दिया जिससे मेरे हृदय में मनसा पाप आ जाएं? अरूणधती ने कहा कि नही प्रभु! ऐसा नही हैं आपके हृदय में कुवृत्ति आपके तप की सूक्ष्मता आने से आई है। आचार्यों की वृत्तियों में तपश्चर होना चाहिए। ब्रह्मचारियों के मध्य में मनस पाठ कराया जाना चाहिए। महर्षि ने छह माह तक मौन रहकर, ब्रह्म का चिन्तन करते हुए उकसा प्रायश्चित किया। देखो, मौन रह करके, वाणी से अन्तर्मुखी हो करके प्रभु का चिन्तन करने से प्रायश्चित होता है। वेद का पठन पाठन करने वाले ऋषियों ने यह कहा कि विद्यालय पवित्र उस काल में होता है जब आचार्य तपस्वी होता है, उसी से विद्यालय में अध्ययन करने वाला ब्रह्मचारी महान बनता है मेरे प्यारे! विचार क्या कि हमारे यहाँ राष्ट्र और विद्यालय, ब्रह्मचारी और आचार्य, राजा और प्रजा तब ऊँचे बनते हैं जब तपस्या होती है इस शरीर का तो विच्छेद होना ही है आज नही तो कल इसका विच्छेद होना है, शरीर के माध्यम में से हम तपस्वी बनें। तप के प्रभाव से हिंसक प्राणी भी अहिंसा में परिवर्तित हो जाता है।

अहिंसामय वेदगान

मुझे स्मरण आता रहता है कि चाक्राणी गार्गी जब वेदमन्त्रों का जटा पाठ में उद्गीत गा रही थी तो हिंसक प्राणी उनके समीप विद्यमान हो गये। भयंकर वन में एकान्त स्थली में साम गान गाया जा रहा था। जटा पाठ, घन पाठ की उसमें पुट लगी हुई थी। जो हृदय से गाता है वह हृदय ही गान का दीपक बनकर रहता है, वह दीपावली को अपने में धारण कर लेता है जब वह गान गा रही थी तो वहाँ जो सर्पराज, सिंहराज, मृगराज और भी जितने हिंसक प्राणी थे, वह उस ध्वनि को अपने में श्रवण करने लगे। जब वह गान गा रही थी तो भारद्वाज गोत्रीय विचित्रकेतु उनके द्वार पर पंहुचे। वह विद्यान होकर उस गान को श्रवण करते रहे। जब गान समाप्त हो गया तो सिंहराज, सर्पराज सब हिंसक प्राणी अपनी स्थली को गमन कर गये। ऋषि का स्वागत करने के लिए चाक्राणी द्वार पर पंहुची और कहा कि प्रभु! विराजिए! वह विराजमान हो गएं तो दोनौं का विचार विनिमय होने लगा। ऋषि ने कहा कि विद्यामयी! क्या कराण है कि सर्पराज, सिंहराज और भी हिंसक प्राणी आपकी ध्वनि को अपने में ध्वनित कर रहे थे सिंहराज, सर्पराज इत्यादि की नाना पंक्तियां बनी हुई थीं चाक्राणी ने बहुत प्रिय उत्तर दिया कि प्रभु! वेद प्रकाश है, वही अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाला है। प्रत्येक प्राणी में आत्मा विद्यमान है और आत्मा, उस प्रभु की चेनता है, प्रभु का गुणगान किसी न किसी रूप में सब गाते रहते हैं इसीलिए जब मानव अपनी

प्रवृत्ति एकाग्र करके हृदय से वेद का निष्पक्ष अहिंसामयी गान गाता है तो हिंसक प्राणी अपनी हिंसा को त्याग देते हैं। चाक्राणी ने जब यह उत्तर दिया तो ऋषि मौन हो गये।

ऋणीता मन्त्र

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने छह माह तक तप किया। एक वेदमन्त्र होता है जिसको ऋणीता मन्त्र कहते हैं उस ऋणीता मन्त्र के द्वारा हम प्रभु के प्रति अपना अन्तरात्मा की वार्त्ता को अपनी ध्वनित करते रहें। उस वेदमन्त्र का पठन पाठन करने के पश्चात उन्होंने अपने को तपोमयी बनाया। उसके पश्चात ब्रह्मचारियों की पंक्ति में विद्यमान हो करके पुनः से वेदमन्त्रों का पठन पाठन कराया विचार आता है कि जब आचार्य तपोमयी होता है, ब्रह्मचारी श्रद्धामय होत है तो विद्यालय ऊँचे बनते हैं जब राष्ट्र ममें मेरी पुत्रियां, मातायें विचित्र होती हैं तप करने वाली हाती है। तो ब्रह्मचारी श्रद्धामय होता है यह संसार बड़ा द्वितीय माना गया है, इसके ऊपर मानव जितना भी अध्ययन कर लेता है उतना ही वह संसार की प्रतिभा में रत्त होकर और गम्भीर गम्भीर मुद्राओं में मुद्रित हो करके अपने को ऊँचा बनाता है।

मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या कि विद्यालय में आचार्य जब त्याग तप और विवेक के द्वारा ब्रह्मचारी को शिक्षा देता है तो उसका मापदण्ड अब तक कोई नही दे सका। राजा कितन तप कर सकता है, कैसे विष्णु बन सकता है उसका भी कोई मापदण्ड नही रहा है राजा ऐसे विचित्र होते हैं कि वह राज करते करते राष्ट्र को त्याग करके भयंकर वन में चले जाते हैं। वही तो त्याग और तपश्चर कहलाता है। वह कहते हैं कि यह जो आत्मा के सहित हृदय रूप संसार प्रभु ने दिया है मुझे इसके लिए भी तो कोई न कोई क्रियाकलाप करना हैं मैं संसार के वैभव में ही लगा रहूँ, यह मेरा कर्तव्य नही हैं, मैं परमात्मा के समीप ही जाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि संसार में विष्णु कोई मापदण्ड नही हैं

हमने जितनी विवेचना दी, इससे कई गुणा अधिक विवेचनायें योग के माध्यम से कर सकते हैं विष्णु नाम सूर्य का हैं लोक लोकान्तरों को भी एक विष्णु रूप माना गया है। विष्णु कहते हैं जो पालन करने वाला है यह लोक लोकान्तरों एक दूसरें में पिरोएं रहते हैं, एक दूसरे में इनकी कृतिका रहती हैं जैसे माला में भिन्न भिन्न प्रकार के मनके हैं परन्तु एक सूत्र में पिरोएं हुए है।, उसी में यह सूत्रित हो रहा है। जैसे माता के गर्भस्थल में शिशु विद्यमान होता है तो शिशु सूत्र है नाना प्रकार के परमाणु मनके बन करके सूत्र में पिरोएं जाते हैं जब वह सूत्र चला जाता है तो मनके बिखर जाते हैं जब यह आत्मा शरीर से पृथक हो जाता है तो परमाणुओं से सुगठित शरीर के परमाणु भी बिखर जाते हैं और वह सूत्र अपने ही रूप में रत्त हो जाता है ऐसे ही यह ब्रह्माण्ड भी एक सूत्र में पिरोया हुआ है। आज का वाक् समाप्त होने जा रहा है अब वेदों का पठन पाठन होगा। ओ३म् देवं मां वाचन रथौ आ पाहाम् ओ३म् यशश्चां गतं मानां त्वा वेतु आभ्यां दधि।

५ गृहपथ्य-अग्नि ०२ ०१ १९९१

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी है और अनन्तमयी माने गए हैं। इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसकी महिमा का सदैव गुणगान गाते रहते हैं वे परमपिता परमात्मा अग्निमयी स्वरूप है, वे प्रकाश के देने वाले हैं और वे संसार को प्रायः प्रकाशित करते रहते हैं इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती और उसकी अनन्तता के ऊपर सदैव विचार-विनिमय करते रहे हैं। हमारे यहाँ जिस भी काल में ऋषि-मुनि एकत्रित हो करके उसके ज्ञान और विज्ञान पर विचार-विनिमय करने लगे है तो यह अनन्तमयी ब्रह्माण्ड अपनी आभा में सदैव महान दृष्टिपात आता रहा है।

नम्रता

मुनिवरों! आज का हमारा वेदमन्त्र जहाँ उस परमपिता परमात्मा की अनन्त वाणी की महिमा का वर्णन करता हैं वहाँ वे परमपिता परमात्मा की महानता और पवित्रता में भी रत्त रहा है। और उसकी इस महिमा का हम सदैव गुणगान गाते रहे हैं जो मानव परमपिता परमात्मा के जितने भी गुणगान गाता रहता है तो वह नम्र और निरभिमानता में सदैव रमण करता रहा है और ज्ञान और विज्ञान में वह सदेव रमण करने वाला है। इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते अपने में यह कहा करते है। कि हे मानव! तू ज्ञान और विज्ञान में रत्त हो जा। जब भी मानव ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ने लगा है अथवा ज्ञानवान बना है उसी काल में नम्रता की महानता पर सदैव रमण करता रहा है तो विचार आता रहता है कि मानव को नम्र रहना चाहिए। जब तक आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता अपना स्वतः अध्ययन नही कर पाएगा तब तक मानव में नम्रता नही आ पाती है। बेटा! हमारे यहाँ नाना प्रकार की अग्नियों का चयन होता रहा है उन भिन्न-भिन्न प्रकार की अग्नियों में एक गृहपथ्य नाम की अग्नि कहलाती है, जिसका वर्णन करते हुए हमारे आचार्यों ने बड़ी विचित्र उड़ाने उड़ी हैं। आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं ने यह कहा है कि यह जो गृहपथ्य नाम की अग्नि है, यही ज्ञान और विज्ञान का द्वार कहलाता है। जब तक मानव गृहपथ्य नाम की अग्नि का चयन नही कर पाता और विद्यालयों में, ब्रह्मचारियों के सम्पर्क में, जब तक गार्हपथ्य अग्नि का चयन नही हो जाता, तब तक मानव अपनी मानवीयता को नही जान पाता है मानव के अन्तःकरण में नाना प्रकार की ज्ञान की कुंजी रहती है और वह मानव के अन्तर्हृदयों मं रमण करने वाली ज्ञानमयी धारा है, उसका जो मानव विश्लेषणा करने लगता है अथवा उसके समीप जग जाने लगता हे तो मानव के नेत्रों के पटल प्रकाश में आ जाते हैं मानव जब वेद का उद्गीत गाने लगता है तो वह वेदज्ञ बन करके ही अपने में अपनेपन को प्राप्त करने लगता है।

आओ, मेरे प्यारे! मैं इस सम्बन्ध में दूरी नही जाना चाहता हूँ। केवल विचार-विनिमय यह कि गार्हपथ्य नाम की अग्नि का चयन करने वाला मानव गृहपथ्य में प्रवेश करने लगता है और यह अग्नि उसे ज्ञान और विज्ञान में ले जाती हे मानव! को व्रती बना देती है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब मानव गृहपथ्य नाम की अग्नि को अपने में चयन करता रहता है। गृहपथ्य नाम की अग्नि प्रायः वह कहलाती है जहाँ पति और पत्नी एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ने लगते हैं। और बाल्य बालिका उस ज्ञान और विज्ञान की धाराओं को अपने में धारण करते हुए ऊँची-ऊँची उड़ाने उड़ने रहते हैं। हमारे आचार्यों ने कहा है कि ऋषि-मुनियों ने

कहा है कि हे मानव! तू गृहपथ्य नाम की अग्नि का चयन करने वाला बन, क्योंकि गृहपथ्य अग्नि स्वर्ग की सबसे प्रथम एक पगडण्डी कहलाती है। और उस पगडण्डी को गहण करने वाला मोक्ष की एक आभा में रमण करने के लिए तत्पर होता रहता है।

चन्द्रमा

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब एक समय पूर्णिमा के दिवस में माता अरून्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज एक एकान्त स्थली में विद्यमान हैं। चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त है और वह प्रकाश दे रहा है। माता अरून्धती बोली कि महाराज! यह चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त है और कैसा अनुपम प्रकाश दे रहा है। यह प्रकाश शीतल है,यह प्रकाश अमृतमयी है और यह प्रकाश शीतल स्पर्श करता हुआ जीवन की आभा को, एक महत्वपूर्ण वस्तु को प्राप्त कराता रहता है। महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि हे देवी! यही चन्द्रमा सोम कहलाता है और सोम के देने वाला है और इसकी विचित्रता यह है कि यह सूर्य से प्रकाश लेता है देखो, वह मान अमृतमान भू वरुणाम् ब्रह्मे कृतं देवत्वाम् अमृताः वेदमन्त्र कहता है कि यही तो अमृत को देने वाला है, यह अमृतमयी है हे देवी! चन्द्रमा ऐसे अनुपम प्रकाश और ऐसी अनुपम विज्ञानमयी धारा को रमण करता रहता हे माता! के गर्भस्थल में जब हम जैसे शिशु विद्यमान होते हैं तो उस समय यह चन्द्रमा पूर्णिमा का प्रकाश लेकर, अपनी सम्पूर्ण कलाओं से युक्त होकर माता नाना प्रकार की नस नाड़ियों के द्वारा अमृत को देने वाला है। मेरी भोली माता इस विज्ञान से प्रायः वंचित रहती है परन्तु जब वेद के वांगमय में अथवा वेदमन्त्र का आश्रय लेकर जब इसके ऊपर अन्वेषण होता है तो प्रायः यह विचार-विनिमय किया जाता है कि यही तो अमृतमयी है। हे माता! जब तू ज्ञानवान बन करे इसके ऊपर विचार-विनिमय करती है तो लोक-लोकान्तरों की प्रतिभा तेरे समीप विद्यमान हो जाती है।

माता अरून्धती ने इस शब्दों को श्रवण करते हुए कहा कि-प्रभु! मैं यह जानना चाहती हूँ कि इसका विज्ञान से क्या समन्वय रहता है महर्षि वशिष्ठ मुनि ने कहा कि हे देवी! यह चन्द्रमा, सूर्य के ऊर्ज्वा लेकर समुद्रों में प्रवेश करता है और समुद्रों से परमाणु लेकर उसका और ऊर्ज्वा का, दोनों का अपने में समन्वय करता है, उस अमृत को प्रदान कराता है और वही अमृतमयी कहलाता है। उस अमृत को हमें पान करना है, जो अमृतमयी है और जिससे मानव का जीवन बन जाता है। देवी ने कहा कि-प्रभु! यह वाक्य तो मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ कि इसका सूर्य से क्या समन्वय होता है? उन्होंने कहा कि यह चन्द्रमा सूर्य में ही तो ओत-प्रोत रहता है। सूर्य ऊर्ज्वा देता हुआ द्यौ से प्रकाश्ज्ञ ले करके वही प्रकाश चन्द्रमा को प्राप्त करा देता है। इसीलिए चन्द्रमा प्रकाश का द्यौतक है और प्रकाश के देने वाला है। इसीलिए हम इस प्रकाश में रत्त रहने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

माला रूपी संसार

मेरे प्यारे! जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया तो माता अरून्धती ने कहा कि हे प्रभु! अमृताम् भू वरुणां ब्रह्मे लोकाम् वरुणास्तम् ब्रह्माः इस अमृतमयी धारा का लोक-लाकान्तरों से क्या समन्वय होता है? उन्होंने कहा कि देवी! यह संसार तो एक प्रकार की माला है। जैसे एक सूत्र में नाना प्रकार के मनके पिरोऐ जाते हैं और उस सूत्र में सूत्रित हो करके ही तो मनकों की वह माला बनती है। मनकों का समन्वय उस सूत्र में आने से ही माला कहलाती हे जैसे प्रत्येक मन्त्र शब्दों से गुंथा हुआ है और शब्दों का जब समन्वय हो जाता है तो ऋचा के रूप में वर्णित होता रहता है परन्तु वेद का मन्त्र यह कहता है कि जब यज्ञमान अपनी यज्ञशाला मंज विद्यमान हो करे याग करता है तो प्रायः उसके मस्तिष्क में ऋचाओं का ज्ञान होने लगता है और यह ऋचाओं का का उदघोषित करने लगता है इसीलिए वेद में ऐसा कहा है कि वे ऋचा यज्ञमान के सन्मुख आ करके अपने गुणों का वर्णन करने

लगती है। मेरे प्यारे! महात्मा वशिष्ठ मुनि ने कहा कि वास्तव में जो अंग और उपांगों से याज्ञिक बनकर याग में परिणत हो जाता है, उस यज्ञमान के हृदय और मस्तिष्क में ऋचाओं का ज्ञान हो जाता है। वे ऋचाएं उसको स्वप्न में प्रायः दृष्टिपात आती रहती हैं।

अरूणधती ने कहा-प्रभु! वास्तवम् ब्रह्वे वरुणाम् ब्रह्मे कृतं देवयानम् महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि हे देवी! वेद और ऋचाओं का ज्ञान, जो यज्ञमान के सन्मुख हो करके उद्गाता गाता रहता है वही तो उद्गीत कहा गया है। उद्गीत को हमें प्रायः गाना चाहिए। देखो, शब्दों की माला बन करके ऋचा बनती है और उसी माला को जब विवेकी पुरूष अपने में धारा करता है तो उसे विवेक होता है और वही विवेकाम् भू वरुणाम् ब्रह्मा लोकाम् वह विवेक बन करके मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करने लगता है और वह गृहपथ्य नाम की अग्नि का अपने में चयन करने लगता है जैसे हम और तुम दोनों इस अग्नि का चयन कर रहे हैं यह अग्नि रूपी, जो विचार रूपी जो अग्नि है उसी अग्नि को यज्ञमान अपने में धारण करता रहता है तो वाचम् ब्रह्मणा पवमाना भूः वरुणाम् यह यज्ञमान पवमान बन जाता है और उद्गाता जब वेदमन्त्र उद्गीत गाता है तो उद्गीत की प्रतिभा उसके समीप आनी प्रारम्भ हो जाती है।

माता अरूणधती ने कहा कि हे प्रभु! आपको धनय है परन्तु मैं यह और जानना चाहती हूँ कि-प्रभु! कहीं तो आप लोक-लोकान्तरों की माला उच्चारण करने लगते हैं कहीं शब्दों की माला बना कर उसका उद्गीत गाने लगते हैं कहीं एक परमाणु का परमाणु से मिलान हो करके उसकी माला बनाने लगते है। हे प्रभु! मुझे यह प्रतीत नही हो पा रहा है कि आप कितनी मालाओं को अपने में धारण करने रहते है। उन्होंने कहा कि देवी! यह संसार एक प्रकार कीमाला कहलाता है, एक प्रकार के मनके और सूत्र, दोनों का समन्वय होता रहता है। हे देवी! तुम्हें यह प्रतीत है कि माता और पुत्र समन्वय ऐसे हैं जैसे माला और सूत्र का समन्वय होता है पिता और पुत्री भी एक प्रकार की माला बन करके रहती है, जैसे सूत्र में मनके हैं इसी प्रकार यह माला कहलाती है पिता पुत्र बन करके, यह सन्तान मनके बन करके इसमें मानव ममतव को धारण करता रहता है इसी प्रकार य हमाला इसी में मानव रत्त रहता है इसी प्रकार लोक-लोकान्तरों की माला यह वैज्ञानिक बनाते हैं जैसे पृथ्वी को ले करके वह सूर्य चन्द्रमा तब माला बनाते रहते हैं हे देवी! मुझे तो यह सव्रत्र संसार एक माला के रूप में दृष्टिपात आतारहता है। यज्ञशाला में अग्नि और समिधा, दोनों समन्वय रहता है जब शब्दों का उद्गीत गाने वाला वेदमन्त्रों की ऋचा को उद्गीत रूप में गात है और स्वाहा कह करके यज्ञमान की वाणी के शब्दों को ले करके, उसको एक सूत्रित कर बना करके, माला बना देता है तो इसीलिए प्रत्येक वमद मन्त्र भी माला के सदृश कहलाता है। हे देवी! वही माला रूप मुझे दृष्टिपात आता रहता है हे देवी! जब तुम वैज्ञानिक युगों में प्रवेश करोगी तो तुम्हें माला ही माला दृष्टिपात आयेगी। हे देवी! यहाँ प्रत्येक मानव माला में पिरोया हुआ है और यह संसार माला के सदृश दृष्टिपात आता रहता है।

माला ही माला में रमण करने वाला साधक जब अपने में साधना में प्रवेश करने लगता है तो वह प्राणायाम करने लगता है और मन को स्थिर बनाना प्रारम्भ करता है देखो, शब्दों की माला बन जाती है और वही शब्दों की अनन्तमयी माला बन करके माला ही माला दृष्टिपात आने लगती है। मनकों को उसके मन और प्राण में पिरो देता है तो वह माला बन जाती है तो विचार आता रहता है कि मालाम् भू वरुणाम् देवतवम् लोकाम् हिरण्यम् वृथाः यह संसार एक प्रकार की माला के सदृश प्रायः हमें दृष्टिपात आता रहता है।

अरूणधती ने कहा कि हे प्रभु!। क्या यह लोक-लोकान्तरों की माला भी माला है ऋषि ने कहा एक-एक विचार की माला है मानो ब्रह्मचारी अपने में ब्रह्मचर्य के रूप में प्रवेश है और एक-एक श्वास को मनका बना करके ब्रह्म सूत्र में या प्राण सूत्र में पिरो देता है तो वह माला बन जाती है। मुझे तो यहाँ तक अनुभव हो रहा है, ऐसा

हमें प्रतीत होता रहता है कि ऋषि-मुनियों के कौतुक को दृष्टिपात करते हुए, ब्रह्याय ब्रहे वृतम द्यौ नाम ब्रह्वा कृतम, वेदमन्त्र यह कहता है कि द्यौ में प्रवेश होने वाले जो शब्द हैं, वे एक माला हैं, उनमें चित्र विद्यमान हैं शब्द भी हैं, चित्र भी हैं क्रियाकलाप भी हैं तो हे देवी! वह माला बन करके माला जितने भी क्रियाकलाप करता है मानो, एक क्रियाकलाप समाप्त नही होता दूसरा क्रियाकलाप प्रारम्भ कर देता है और तीसरा प्रारम्भ कर देता है तो एक दूसरा क्रमबद्ध हो करके और एक दूसरे में पिरोया हुआ जो क्रियाकलाप है, वह भी माला बनकर रहता है।

महर्षि वशिष्ठ मुनि ने कहा कि हे अरूणधती! यह संसार एक दूसरे में पिरोया हुआ है, हे देवी! मैं कहाँ तक इसका वर्णन करूंगा। जैसे आचार्य मुझे ब्रह्मवेत्ता कह करके सम्बोधित करते रहे हैं। और यह भी कहा है कि ब्रह्मणं उपाधाम् भू वरुणाम् ब्रह्मे, जब तक मैं ब्रह्म की उपाधि नही दे देता तब तक ब्रह्म उपाधि से कोई अलंकृत नही हो पाता उसका मूल यह है कि ब्रह्मणे ब्रह्मचारी और नम्रताम् भू कृतं देवत्वाम् वेद की आख्यिका यह कहती है कि ब्रह्मवेत्ता वही बनता है जो निर्भिमानता की माला को पहन लेता है, अपने में धारण कर लेता है नम्रता उस मानव का आभूषण हैं क्योंकि ब्रह्म नम्र है इसीलिए मानव को नम्र होना हैं, परमपिता परमात्मा देखो, अकाय है इसीलिए अकाय परमाणु के ऊपर अन्वेषण करना है। परमपिता परमात्मा निर्भय है इसीलिए मानव को निर्भय होना है जिससे हे देवी! वे परमपिता परमात्मा के समीप जा सके और अपने में अपनेपन की धारा को धारण करता रहे।

गृहपथ्य अग्नि का पूजन

माता अरूणधती से वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि हे देवी! आओ, अब हम गृहपयि नाम की अग्नि का पूजन करेंगें। देवी ने कहा बहुत प्रियतम। तो यहाँ विचारों का नाम अग्नि माना गया है और जो गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करता है वही तो महान पवित्रतव को धारण करने वाला है। इसीलिए गृहपथ्य नाम की अग्नि का मानव को चयन करना चाहिए। वह अग्नि अपने में अपनेपन को ब्रह्मणे रूतम्, तेजोमयी बना देती है और तेजोमयी बनाकर अग्न्याध्यान होतारहता हे माता! पिता जब इस अग्नि का चयन करते है। और ज्ञान धाराओं में रत्त रहने लगते है। तो बेटा! शत्रु भी उनका मित्र बन जाता है और वह ऐसी घनष्टिता में मित्रता को अपने में धारण करता जैसे मनके और सूत्र दोनों का समन्वय हो करके एक माला बन जाती है जो इस प्रकार से गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करता है वही तो शत्रुओं को भी अपना मित्र बना लेता है और मित्रता इस संसार में एक दूसरे का मिलान है और वही गृहपथ्य नाम की अग्नि है इस अग्नि का चयन करते हुए माता-पिता देनों जब इस प्रकार के विचारों को करने लगते हैं, इन विचारों में रत्त रहने लगते हैं तो बाल्य-बालिका प्रायः अपने में पवित्रता की आभा में रत्त हो करके गृह को ऊँचा बनाते हैं।

मुनिवरों! गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है यदि कोई गृह आश्रमवासी यह चाहता है कि मेरा गृह स्वर्गमयी बन जाए तो गृह में दोनों का विचार-विनिमय पवित्र होना चाहिए, जिसमें उनके विचारो की तरंगें, उनके विचारों की धाराएं गृह में प्रविष्ट हो जाएं और बाल्य बालिका के अन्तःकरण में वह तरंगें जब स्पर्श करती हैं तो उनका हृदय पवित्र बन जाता है और उनके विचारों में एक पवित्र अग्नि का अध्यान होने लगता है।

आओ, मेरे प्यारे! मैं आज तुम्हें विशेष चर्चा नही देने आया हूँ विचार-विनिमय क्या कि देखो, यदि गृह, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना है तो अपने विचारों को पवित्र बनाना होगा। और उन विचारों में एक महानता की पवित्र ज्योति अपने में प्रदीप्त रहनी चाहिए, जिस ज्योति को धारा करने वाला अपने में मानवीयता का दर्शन कर सके। वह सत्य के आधार पर सत्यता को अपने में ग्रहण करने लगे और स्वतः अपना अध्ययन करने लगे क्योंकि अपना, स्वतः का अध्ययन करना ही अध्ययन कहलाता है जहाँ वह नाना प्रकार की पोथियों का अध्ययन करता है

और पोथियों का अध्ययन करता-करता इतनी गम्भीर मुद्रा मं चला जाता है कि वह अपने अन्तःकरण का स्वतः अध्ययन करने लगता है तो उस अध्ययन में जब तक अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों का अध्ययन नही पाता, तब तक उसका अध्ययन पूर्णता को प्राप्त नही हो सकेगा।

अध्ययन कहाँ से प्रारम्भ होता है अध्ययन बेटा! गृहपथ्य नाम की अग्नि से प्रारम्भ होता है वह अपने विचारों की धाराओं को अपने में धारा करता हुआ अपने में अपनेपन को चिन्तन में लाता रहता है। इसीलिए वह गृहपथ्य नाम की अग्नि से प्रारम्भ होता हुआ पोथियों तक चला जाता है और पोथियों का अध्ययन करता हुआ अपने अन्तःकरण के क्रियाकलापों का अध्ययन करने लगता है उससे और गम्भीरता में जाता है तो अन्तःकरण का अध्ययन करते-करते जन्म-जन्मान्तरों का अध्ययन करता हुआ मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करने लगता है बेटा! मैं तुम्हें गम्भीर क्षेत्रों में ले जाने के लिए नही आया हूँ केवल विचार यह कि हमारे यहाँ गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन होना चाहिए। जिससे स्वर्गमय आनन्द में आनन्दित हो करके इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करते रहें।

आज बेटा! मैं अध्ययन की बहुत-सी चर्चाएं करता रहा हूँ अध्ययन का प्रत्येक विचार से समन्वय रहता है इसीलिए हमारा प्रत्येक विचार अध्ययन में रहना चाहिए। हम उ अध्ययन को करते रहें जिससे मानवतव अपने में पवित्रता को धारा करता हुआ इस संसार सागर से पार हो जाएं। यमाचार्य ने बालक नाचिकेता से यही कहा था कि नाचिकेता! यदि तुम स्वर्ग में जाना चाहते हो तो स्वर्ग में जाने के लिए सबसे प्रथम गार्हपथ्य नाम की अग्नि और गृहपथ्य नाम की अग्नि का दोनों अग्नि की पूजा करनी है। पूजा का अभिप्रायः यह नही हैं कि हम अपने आहार में रंजित हो जाएं। देखो, उपासना का अभिप्रायः यह है कि उसको क्रियात्मकता में लाना है। देखो, गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन, दोनों को क्रियाकलापों में रत्त करते हुए उनको प्रत्यक्षवाद में लाना है उनका अध्ययन करना है जिससे हमारा विद्यालय और गृह, दोनों ही पवित्रता को प्राप्त होते रहें। विचार-विनिमय केवल यह कि कोई भी ऐसा विषय नही हैं। जिससे हम अपनेपन को अपने में न धारण कर सकें।

मेरे प्यारे! जब मेरी प्यारी माता गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजन करने लगती है तो प्राणों का अध्ययन करके अपने गर्भ के शिशु से वार्त्ता प्रगट करने लगती है। बहुत पुरातनक काल में वेद की ऋचा इस प्रकार का हमें अध्ययन कराती रही है। माता वेद का अध्ययन करती रहती है। ममं ब्रह्मा प्रणाम वरुणां ब्रह्मेः प्रणाम ब्रहे कृतं प्राणः उदगान स्वर तप्रहे उदगान भू वयणामस्तम मेरे प्यारे! वेद की आख्यिका कहती है कि माता जब अपने में गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करने लगती है तो प्राण को अपान में और अपान को व्यान में और व्यान में उदान में और उदान को सामन में संचय करती हुई एकान्त मुद्रा में विद्यमान होकर आन्तरिक जगत में चली जाती है और आन्तरिक जगत में मेरी प्यारी माता अपने उस शिशु से वार्त्ता प्रगट करने लगती है जो माता के गर्भस्थल में विद्यमान हैं इस विज्ञान का अभ्यास और क्रियात्मकता से समन्वय रहता है यह गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन है पूजन का अभिप्रायः यह है कि उसको साकार रूप बनाना है, पूजा का अभिप्रायः यह है कि उसको क्रियात्मक रूप दे करके उसको जानना है।

आओ, मेरे प्यारे! आज का हमारा वेदमन्त्र, जिसका ज्ञान और विज्ञान से समन्वय रहता है, कह रहा है कि हे यज्ञमान! हे ब्रह्मणां ब्रहे तुम गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करो। यह गृह जिसने ऊँचा बना लिया है जिसने गृहपथ्य नाम की अग्नि को जान लिया है वही संसार सागर से पार हो जाता है हम परमपिता परमातम की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है कि पवमानाम् यु वरुणाम् ब्रह्मे कृतम्, हे पवमान! तू अपने गृह में अपनी मानवीयता को

ऊँचा बना जिससे वेद का मन्त्र तेरा साकार बन करके, तेरे समीप उद्बुद्ध हो करके तू अपने में अपनेपन को धारण कर सके।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि परमपिता परमात्मा ने इस संसार का सृजन किया है वह निर्माण करने वाला है, वह धिराज है। हमें उकसो उपास्य देव स्वीकार करके उसकी सृष्टि को हमें निहारना है और क्रियात्मक रूप देना है परमपिता परमात्मा की महती को जान कर, उसकी माला बना करके धारण करनी है। यह है बेटा! आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट कर सकूंगा। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

६ निष्कामकर्मी ०३ ०१ १९९१

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गएं है। और उसका जो ज्ञान और विज्ञान है वह भी अनन्तमयी माना गया है सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं, परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नही हुआ, जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके क्योंकि वह सीमा से रहित है और सीमा में आने वाले नही हैं।

वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान वाला है, इसीलिए हम उसकी महिमा का प्रायः गुणगान गाते रहते हैं। और यह विचार-विनिमय करते रहते हैं कि परमपिता परमात्मा का अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान ब्रह्माण्ड की प्रतिभा में बिखरा हुआ है। हम उस ज्ञान और विज्ञान को एकत्रित करते हुए अपने में विज्ञानवेत्ता बन करके और उसकी महिमा, उसकी अनन्तता के ऊपर विचार-विनिमय करते रहें। परमपिता परमात्मा अनन्तमयी महान वृत्तियों वाला, तरंगों से तरंगित होने वाला विज्ञान मानवीय मस्तिष्कों में निहित रहा है और ब्रह्माण्ड की एक-एक तरंग में वही तरंगित होता रहा है हमें उस परमपिता परमात्मा के मूल में जाना चाहिए। और परमात्मा की महती और उसके विज्ञान के ऊपर प्रायः हमारा विचार-विनिमय होना चाहिए, जिससे हम अपने में महानता को जान करके एक-एक वेदमन्त्र के ऊपर अन्वेषण करते रहें।

आज का हमारा वेदमन्त्र हमें कुछ प्रेरित कर रहा है, प्रेरणा दे रहा है। हम उसी प्रेरणा के आधार पर अपने विचारों को व्यक्त करते है। क्योंकि मानव जब भी अपने विचारों में रत्त रहने के लिए तत्पर होता है तो आत्मा की प्रेरणा को स्वीकार करने वाला होता है। जो मानव अपनी अन्तरात्मा की प्रेरणा के आधार पर नानाप्रकार के क्रियाकलाप करता रहता है, वह मानव महान कहलाता है, वह आत्मा की प्रेरणा के आधार पर अपने जीवन को व्यतीत करने वाला साधक कहलाता है और वह परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहना चाहता है। आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है कि हे मानव! तू आत्मा की प्रेरणा के आधार पर अपने क्रियाकलापों को प्रारम्भ कर और अपने जीवन को व्यतीत करने का प्रयास कर क्योंकि आत्मा तेरे शरीर में एक चेतना बन करके रहती है और उस चेतना में रत्त रहने वाला प्राणी चैतन्य कहलाता है। जो मानव आत्मा की प्रेरणा के आधार पर अपने क्रियाकलापों को प्रायः अपने में धारयामि बनाता है वही मानव, मानव कहलाता है और वह साधक बन जाता है।

आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है कि प्रेरणाम् भू वरुणाम् आत्मा, हे मानव! तू प्रेरणा को स्रोत बनाना चाहता है और प्रेरित हो करके तू आत्मा को अपने में धारयामि बनाना चाहता है जिससे आत्मवेत्ता बन करके तू अपने में मानवीयता को धारण करता हुआ इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करता रहे। आज का हमारा वेदमन्त्र हमें यह प्रेरणा दे रहा है कि हे मानव! तू आत्मा के अनुकूल अपने क्रियाकलापों को प्रारम्भ कर। क्योंकि आत्मा एक महान प्रकाश है, आत्मा तेरे शरीर में चेतना बन करके रहती है और आत्मा वे प्रेरित करती रहती है। इसीलिए तू उस प्रेरणा के आधार पर अपने क्रियाकलापों को प्रारम्भ कर। आओ, मुनिवरों! आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाने आया हूँ, जहाँ मानव अपने जीवन में, अपने में, अपनेपन को ही धाराण् ऋता रहा है। बहुत समय से एक प्रकरण चल रहा है कि मानव को सवर्ग कैसे प्राप्त होता है? प्रत्येक मानव स्वर्ग की कल्पना कर रहा है और वह स्वर्ग में जाना चाहता है जितने भी नाना प्रकार के क्रियाकलाप हैं चाहे वह आत्मा से प्रेरित होने वाले हों चाहे

वह वेदमन्त्रों से प्रेरित होने वाले हों परन्तु उनके गर्भ में एक हीमूल होता है कि स्वर्ग अश्वम ब्रह्मा कृतं मैं स्वर्ग के लिए जाना चाहता हूँ प्रत्येक मानव की यह आकांक्षा बनी रहती हे कि मैं चला जाऊं। मोक्ष की कामना? तो बहुत ही सूक्ष्म प्राणियों को होती है। तो बेटा! विचार आता है कि सबसे प्रथम मानव स्वर्ग को चाहता है। और स्वर्ग में जाने वाला प्राणी ही आत्मा के अन्तिम तथ्यों में रमण करने लगता है। प्रत्येक मानव क्या, प्राणी मा अपने को स्वर्ग में ले जाना चाहता है प्रत्येक मानव अपने में यह चाहता रहता है कि मैं अनुष्ठान करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त हो जाऊं।

मेरे प्यारे! एक मानव वाणी के ऊपर संयम कर रहा है और उसकी यह भावना अन्त तक बनी रहती है वह विद्यालयों में रहने वाला आचार्य हो, चाहे गृहस्थलि में रमण करने वाला मानव मात्र हो या फिर पितर हो। देखो, राजा भी चाहता है कि मेरा जीवन, मेरा राष्ट्र और मेरा मानवीय समाज सब स्वर्ग को प्राप्त हो जाएं। विचार आता रहता है कि स्वर्ग कैसे प्राप्त हो? मैं इस वाक्य में लगा रहता हूँ विचार-विनिमय में लाता रहता हूँ कि आत्मा की प्रेरणा के आधार पर जो मानव अपने जीवन को क्रियाकलाप में ले जाता है, वह तो स्वर्ग में जाने के लिए सदैव तत्पर रहता है। मेरे पुत्रों! नाना प्रकार के अनुष्ठान करने वाला प्राण्ी अनुष्ठानित बना रहता है। और विचाराता रहता है कि मैं स्वर्ग में चला जाऊं।

एक मानव प्राणायाम कर रहा है और प्राण को अपान में ले जाता है अपान को समान में ले जाता है, समान को व्यान में और व्यान को उदान में प्रवेश करता रहता है तो देखो, उसके मन में एक ही भावना है कि मैं स्वर्ग में चला जाऊं और मैं स्वर्गश्वम् कुर्वम् ब्रह्मा वरुणाम् देवत्वाम्। सूर्य लोक में लाने वाला स्वर्ग की कामना करता रहता है और कहता है कि मैं सूर्य के विज्ञान में रत्त हो जाऊं और मैं सूर्य के विज्ञान को जानने लगूं, उस ऊर्ज्वा में प्रवेश कर जाऊं जिस ऊर्ज्वा से हमारा जीवन महान बनेगा। तो मेरे प्यारे! क्यों ऐसी भावना बन रही है कि वह स्वर्ग चाहता है, वाणी से चाहता है। प्रातःकालीन एक मानव अपनी स्थलियों से पृथक हो करके अपने में अनुष्ठान करने लगता है। वह परमात्मा को सर्वत्रता में दृष्टिपात करता हुआ ब्रह्मयाग कर रहा े याग का अभिप्रायः उसका यही है कि मैं स्वर्ग को चला जाऊं। और मेरा जीवन स्वर्गश्वम् बन जाए, मैं स्वर्ग को जाना चाहता हूँ।

मुनिवरों! यमाचार्य और नचिकेता का संवाद बारम्बार स्मरण आता रहता है वह सदैव स्वर्ग की कल्पनाकरते रहे हैं। नचिकेता ने यमाचार्य से कहा था कि हे प्रभु! मैं स्वर्ग में जाना चाहता हूँ मुझे स्वर्ग की विवेचना कीजिए तो ऋषि यमाचार्य ने यही क्हा था कि हे नाचिकेता! तुम तीन प्रकार की अग्नियों की पूजन करो। अग्नि तो बहुत प्रकार की होती हैं हमारे यहाँ विज्ञानवेत्ताओं ने जब अग्नि के ऊपर अन्वेषण किया तो अरबों-खरबों प्रकार की अग्नियां पाईं, परन्तु मैं उन अग्नियों में जाना नही चाहता। जो आध्यात्मिक क्रियाकलापों में आने वाली अग्नि है, उस गार्हपथ्य नाम की अग्नि का वर्णन मैंने इससे पूर्वकाल में किया था गार्हपथ्य नाम की अग्नि का, सत्य को अपनाते हुए, ब्रह्मचारी को वर्णन कराया कि देखो, ब्रह्मचारी मृत्यु से पार हो जाता है अथवा जो ब्रह्म में समाधिष्ट हो करके ब्रह्म की आभा में रत्त हो जाता है, वह ब्रह्मचारी है।

वैश्वानर अग्नि

मेरे पुत्रों! जब मानव गृपथ्य नाम की अग्नि से उपरामता को प्राप्त होता है तो वह वैश्वानर नाम की अग्नि में चला जाता है। वैश्वानर नाम की अग्नि मानव और मानव समाज को ऊँचा बनाती है, वह विद्यालयों में प्रदीप्त होती है जैसे गृहपथ्य नाम की अग्नि गृह स्थलियों में प्रदीप्त होती है और गार्हपथ्य नाम की अग्नि जैसे ब्रह्मचारी के अन्तर्हृदय में प्रविष्ट होती है। जब मानव गृह से उपराम हो जाता है तो गृहपथ्य नाम की अग्नि ही वैश्वानर नाम की अग्नि से समन्वय करा देती है और उसी से मिलान करा देती है। वैश्वानर अग्नि, आचार्यों की अग्नि है। जब आचार्य

बुद्धिमता से अपने मन को अग्नि की धाराओं में प्रवेश करके ब्रह्मचारी को शिक्षा देता है तो वैश्वानर नाम की अग्नि से वह उसे तपायमान कर देता है और जब ब्रह्मचारी तपायमान हो जाता है तो आचार्य का उसमें नामकरण हो जाता है।

बेटा! मैंने तुम्हें कई कालों में वर्णन करते हुए कहा था कि महाराजा! अश्वपति के यहाँ विद्यालय में जब ब्रह्मचारियों को शिक्षा दी जाती है तो उस समय महान आचार्यों में जो एक पुरोहित होता, वह ब्रह्मचारी के मस्तिष्क का अध्ययन करता, वह उद्गीत रूप में और विवेक में तन्मय हो करके जब विद्या को प्रदान करता तो बेटा! ब्रह्मचारी अपने में ब्रह्मवर्चोसि का पालन करने लगते। मुझे बहुत पुरातन काल में महाराजा अश्वपति के यहाँ कुछ शिक्षा देने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है महाराज अश्वपति के यहाँ यह नियमावली थी कि विद्यालय में वैश्वानर नाम की अग्नि का पूजन करने वाला आचार्य होना चाहिए। जो इन्द्रियों से तृप्त हो गया हो, इन्द्रियों के क्रियाकलाप से जो उपराम हो गया हो, जो ब्रह्मचर्य, गार्हपथ्य और गृहपथ्य नाम की अग्नि से उपराम हो गया है, वही वैश्वानर नाम की अग्नि से युक्त कहा जाता है। जैसे मानव जब संसार के वैभव वृत्तियों में उपराम हो जाते हैं तो वाणी प्रभु का उद्गीत गाने लगती है, इसी प्रकार अग्रम ब्रह्मेः वैश्वानर नाम की अग्नि का पूजन करने वाला विद्यालय में वेद को ले करके, उस अग्नि का अब्धान कर रहा है।

विचार आता रहता है बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल मैं इन वाक्यों को सम्भवतः प्रगट किया है वैश्वानर नाम की अग्नि का पूजन वानप्रस्थी करता है और वह विद्यालायों में शिक्षा देता है बेटा! जब अध्ययन कराते है। तो अन्तर्हृदय में से तरंगें उदबुद्ध होती हैं महाराजा अश्वपति के यहाँ विद्यालयों में तो वैश्वानर नाम की अग्नि का पूजन करने वाले वानप्रस्थी ही शिक्षा देते रहते हैं राजा के यहाँ नियमावली बनी हुई थी कि वह विवेकी और वैश्वानर नाम की अग्नि का पूजन करने वाला तपस्वी जिसके हृदय में वासना की तरंगें भी न आएं, वह ब्रह्मचारियों को अध्ययन करा सकता है। मेरे प्यारे! विद्यारम्भ ब्रहे, महाराजा अश्वपति के यहाँ ऐसे वैज्ञानिक यन्त्र निर्मित किया जाता था कि जो विद्यालय में शिक्षा दे रहा है, उसकी तरंगों को वह यन्त्र अपने में धारण कर रहा है और उन तरंगों को वैज्ञानिक अपने में दृष्टिपात करते रहें और वह शिक्षा यन्त्रों में साक्षात्कार दृष्टिपात आती रहे।

मैंने यह वाक्य बेटा! कई कालों में तुम्हें वर्णन कराते हुए कहा है परन्तु यहाँ अचार्यजन यह कहता है कि आचाराम् भू वरुणां ब्रह्मा कृत्यः लोकाः वायु सम्भवे वायु सम्भवे ब्रह्मे मेरे प्यारे! एक विदुषी युवा शिक्षा देने के लिए तत्पर रही। नई युवती जब वह शिक्षा देने लगी तो उसके शिक्षा के विषय में वासनाओं की तरंगें जागरूक हो गईं। वह श्रृंगार रस के ऊपर ब्रह्मचारियों को शिक्षा दे रही थी तो उसकी वासना में बलवती आ गई। वासना की बलवती तरंगें आ करके जब वह यन्त्र सांयकाल को वैज्ञानिकों के समीप पंहुचा तो उन्होने कहा कि यह सुरनम् ब्रहे, मानो यह जो देवी है, जिसका यह उपदेश हैं इसमें चंचलता आ गई है और जो श्रृंगार रस की शिक्षा दे रहा है उसे तो विवेकी होना चाहिए। देखो, विद्यालयों में तो भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा दी जाती है। यह प्रकृति अपने श्रृंगार को ले करके उग्र क्रिया को धारण करती है। इसी प्रकार मानव को जब चंचलता आ जाती है तो वह शिक्षा देने के योग्य नही हैं।

वैज्ञानिकों ने यह निर्णय लिया कि यह युवती शिक्षा देने के योग्य नही है। इसकी जो तरंगें यन्त्रों में प्रवेश कर गई हैं, सयुक्त विद्या का जब प्रावधान होगा और वे तरंगें बाल्यों के अन्तःकरण में प्रवेश करेंगी तो ब्रह्मचारियों के अन्तःकरण में चंचलता आ जाएगी। जब चंचलता आ जाती है ता ेवह शिक्षा नही रह पात, वह अशिक्षा बन जाती है। तो मेरे प्यारे! विचार आता है कि वैश्वानर नाम की अग्नि उसे कहते हैं जहाँ शिक्षक विद्या दे रहा है, चाहे वह श्रृंगार रस में शिक्षा दैने वालाहो चाहे वह प्रकृति में श्रृंगार की शिक्षा देने वाला हो परन्तु यदि उसमें चंचलता न

आए तो वह शिक्षा मान्य कहलाती है देखो, अध्ययन कराने वाला सबसे प्रथम धर्मानि गन्धर्म ब्रह्मे वृतमः देवाः धर्म में ले जाता है तो वही शिक्षा गार्हपथ्य है, वही शिक्षा गृहपथ्य है और वही शिक्षा वैश्वानर नाम की अग्नि बन करके जब उसका पूजन किया जाता है तो मानव स्वर्गश्चमम् बन जाता है तो विचार आता रहता बेटा! कि शिक्षा जब दी जाती है तो वैश्वानर नाम की अग्नि का आचार्यों को पूजन करना चाहिए। जो मानव के अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाली हो और जहाँ ज्ञान से युक्त रहने वाली तरंगें हो, उसी अग्नि का नाम वैश्वानर नाम की अग्नि कहा जाता है।

बेटा! विचार आता रहता है तीसरी प्रकार की अग्नि में वानप्रस्थी तपता है, जो गृह से उपराम होने वाला एक मात्र प्राणी है और वह वैश्वानर नाम की अग्नि की पूजा में रत्त रहने वाला विद्यालयों को सजातीय बनाता है। जिस विद्यालय में इस प्रकार की विवेक से सनी हुई, विवेक में रत्त रहने वाली शिक्षा होती है, वही मुनिवरों! ब्रह्मचारिणीयों और ब्रह्मचारियों को पवित्र बनाती है जब आचार्यजन एकत्रित हो करके शिक्षा के ऊपर बल देते हैं तो शिक्षार्थी तपस्वी बन जाता है। बेटा! तपस्वी किसे कहते हैं? जिसकी वाणी में पवित्रता हो, जिसकी वाणी में सत्यता का प्रावधान हो, जो ब्रह्मचरिष्यामि जो, जिसकी आचार संहिता पवित्र हो।

ब्रह्मयाग

मेरे प्यारे! आचार संहिता किसे कहते हैं? मानव प्रातःकालीन जब अपनी दैनिक शारिरीक क्रियओं से उपराम होता है तो वह अग्नाम् भू वरुणम् कर्तव्यम् ब्रह्मे वृतम् देवाः शरीर पर जल का प्रोक्षण करता हुआ अपनी आचार संहिता का निर्माण करता हुआ सबसे प्रथम वह अग्रम ब्रह्मा वरुणम, ब्रह्मयाग करता है। ब्रह्म के चिन्तन को ब्रह्मयाग कहते हैं। ब्रह्म का चिनत करने वाला सबसे पूर्व अपने शरीर की क्रियाओं से निवृत्त हो करके प्राणायाम करता है। प्राण और मन के विचार को एक सूत्र में लाना प्रारम्भ करता है। उसके पश्चात वह ब्रह्म का चिन्तन करत है कि हे ब्रह्म मैं तेरी शरण में आया हूँ और जहाँ भी मैं जाता हूँ वही तुझे दृष्टिपात करता हूँ। प्राचीदिग् में, पूर्व में अग्नि का प्रावधान हो रहा है और दक्षिण में इन्द्र बन करे रहते हो और प्रतीचि दिग् में वरुण बन करके रहते हो, उदीचि दिग् में सोम बन करके रहते हो, ज्ञान के भण्डार हो, ध्रुवा में पालन करने वाले विष्णु हो और ऊर्ध्वा में वह बृहस्पति कहलाता है। वह प्रभु की उपासना करता प्रातःकाल कहता है कि-प्रभु! मैं पाप करने के लिए कहा जाऊं और मेरे द्वारा पाप क्यों हो?

हे प्रभु! मुझे इतनी शक्ति प्रदान करो कि मैं पूर्व में अग्नि के तुल्य तेज को दृष्टिपात करता रहूँ। मैं दक्षिण में इन्द्र को दृष्टिपात करता रहूँ जो अन्न का भण्डार है, जो मानव को वृत बनाता है। हे प्रभु! प्रतीचि में त्वम् अग्नाम् भू वरुणा बन के रहते हो और वह वरुण ही मेरे जीवन की सार्थकता है। इसी प्रकार उदीचि में सोम बन करके रहते हो। सोम किसे कहते हैं? ज्ञान को सोम कहते हैं, विज्ञान को सोम कहते है।, विवेक को सोम कहते हैं वह धारण होने वाला सोम है। अप्रताम् देवत्वाम्, योगीजन इसी सोम को पान करते हुए, ज्ञान और विवेक से सने हुए अमृत को प्राप्त करते है। तो उनकी वाणी में सोमपन आ जाता है हे प्रभु! आप ध्रुवा में पालन करने वाले विष्णु बन करके रहते हो। आप हम सबकी पालना करने वाले हो और ऊर्ध्वा में हे प्रभु! अप्रताम् ब्रह्मणे ब्रहा कृत्य अश्वाम् ब्रह्मा वृत्यं और विवेक से होती है ज्ञानी ही संसार में महान कहलाता है और उसका नेतृतव करने वाला बृहस्पति कहलाता है हे प्रभु! मैं पापाचार करने के लिए कहाँ जाऊं आप तो मेरे रक्षक हैं और आप मुझे प्रेरित करते रहो कि मैं दूरिता में न जाऊं। प्रभु! मैं कालिमा को अपने से दूर करना चाहता हूँ प्रभु मैं सोम को पान करना चाहता हूँ इस प्रकार जो मानव प्रभु को स्मरण करता है तो प्रातःकाल ब्रह्म का चिन्तन करता है,महान कहलाता है इसीलिए ब्रह्म का चिन्तन होना चाहिए। और उसके पश्चात देव पूजा होनी चाहिए।

देव पूजा

आत्म दर्शन

मैं देव पूजा के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नही देना चाहता हूँ परन्तु मैं और एक आचार संहिता बना रहा हूँ। प्रातःकालीन विद्यालयों में इस आचार संहिता का निर्माण किया जाता है कि आचार्यजन ब्रह्म का चिन्तन करने के पश्चात देव पूजा में रत्त हो जाएं। देव पूजा उसे कहते हैं जहाँ देवताओं की पूजा की जाएं। मैंने देवताओं के सम्बन्ध में कई प्रकार के विचार दिए हैं। बेटा! सबसे प्रथम देवता वह माता कहलाती है, जो माता अपने गर्भ में सर्वत्रता का ज्ञान करा देती है। नाना प्रकार के नक्षत्रों की छाया माता के गर्भस्थल में आती रहती है, अन्न में आती रहती है जल के द्वारा आती रहती है। माता उसे पान कराती रहती है और गर्भ में सोमयी को ऊँचा बना देती है, नक्षत्रों का ध्यान करती है। इस प्रकार माताएं जब सन्तान को जन्म देती हैं तो गृह महानता में रमण करने लगता है।

वैश्वानर अग्नि

आज मैं इस सम्बन्ध में चर्चा नही करूंगा, यह चर्चा तो बेटा! मैं कल प्रगट करूंगां आज का विचार केवल यह है कि आचार संहिता बनानी चाहिए। उस आचार संहिता के आधार पर जब मानव अपने विद्यालयों को ऊँचा बनाता है तो विद्यालयों में वैश्वानर नाम की अग्नि का पूजन होता रहता है आओ, पुत्रों! हमारे पितर, माता और आचार्य यह चैतन्य देवता हैं और पृथ्वी जल, अग्नि, वायु यह परम्परा से हमारे जड़ देवता कहलाते हैं। इनके ज्ञान और विज्ञान को जानना, इनको सुगन्ध रूप में परिणत कर देना बहुत अनिवार्य है। पूजा का अभिप्रायः यह है कि हमें उनको क्रिया में लाना है इस विचार को ले करके आगे वेद का ऋषि कहता है कि अग्नम् ब्रहवे कृतम् देवात्वाम् ब्रहे यह देव पूजा है। इसका पूजन करने वाला संसार में विजयी होता है, वह सदैव अपने में महान बन करके संसार को विलय कर लेता है।

बेटा! आज का विचार केवल यह है कि देव पूजा करने के पश्चात पितरों का याग करता हुआ, बलिवैश्व याग करता हुआ अपने विद्यज्ञलयों में वह ब्रह्मचारियों के समीप वैश्वानर नमा की अग्नि को ले करके वहाँ उसका पूजन कराता है और वह ब्रह्मचारियें को जब आचार संहिता के आधार पर वेदमयी शिक्षा देता है तो विद्यालय सजातीय बन जाते हैं और उस राजा के राष्ट्र और समाज में स्वर्ग का वातावरण छा जाता है। उन विद्यालयों में स्वर्ग है, जिन विद्यालयों में ब्रह्मचारी वैश्वानर नाम की अग्नि का प्रकाश ले करके भ्रमण करते हैं, वे जहाँ जाते हैं वहाँ स्वर्ग की स्थापना हो जाती है तो यह संसार स्वर्ग में परिणत हो जाता हे माता!-पिता की भी आचार संहिता है, आचार्यों की भी आचार संहिता है देखो, ब्रह्मचारी अपनी आचार संहिता को जब ऊत्रचा बनाते है तो यह संसार महान बन जाता है, राजा के राष्ट्र स्वर्ग में चला जाता है और राजा यह नही चाहता कि मैं किसी के ऊपर अपना अनुशासन करने वाला बनूं राजा वह होता है, जो ब्रह्मज्ञानी है। इसकी चर्चा मैं कल अवश्य प्रगट करूंगा।

आज का हमारा विचार केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते ुए अपने में महानता का वर्णन करते हुए, वैश्वानर नाम की अग्नि का पूजन करें। जो माता-पिता गृह से उपराम हो जाते हैं तो वही वैश्वानर नाम की अग्नि का पूजन करते हैं और विद्यालयों को सजातीय बनाते हैं वे अपने जीवन के अनुभव को जब ब्रह्मचारियों को और ब्रह्मचारिणीयों को प्रगट कराते हैं तो विद्यालय शृंगारित हो जाते हैं। विद्यालय में ब्रह्मचारी उस शृंगार को धारण करके जब विद्या का अध्ययन करते हैं तो विद्या उनके अन्तःकरण को सजातीय बना देती है, अन्तःकरण को पवित्र बना देती हे जिससे उनका जीवन महान और पवित्र बन जाता है बेटा! आज मुझे वह काल स्मरण आता है जब महाराज अश्वपति के यहाँ इए प्रकार की शिक्षा दी जाती रही। तब ही तो राष्ट्र ऊँचे बनते हैं और राजा के राष्ट्र में अपने क्रियाकलापों में मानव पवित्र बनता रहता है।

मेरे प्यारे! मैं कोई व्याख्याता नही हूँ। केवल तुम्हें परिचय देने के लिए चला आता हूँ और वह परिचय यह कि विद्यालयों में यह शिक्षार्थी होने चाहिएं जिनकी आचार संहिता पवित्र हो। जब प्रत्येक मानव की आचार संहिता

निष्काम कर्म से पवित्र बन जाती है तो वह समाज को ऊँचा बना देती है, राजा के राष्ट्र को स्वर्ग में ले जाती है। आज का विचार तो केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए संसार सागर से उपरामता को प्राप्त करते हुए अपने को स्वर्ग में ले जाएं और मोक्ष की पगडण्डी के लिए तत्पर हो जाएं। स्वर्ग उसे कहते हैं जहाँ किसी प्रकार का अशुद्ध चिन्तन नह हो। जहाँ मानव रूद्र अप्रत्म् ब्रह्मा अपने जीवन के क्रियाकलापों के चार भाग बनाकरके निर्द्वन्द्व रहने वाला प्रभु की आभा में और प्रभु के गर्भ में अपने को स्वीकार करने वाला हो, वही अपनी आचार संहिता का ऊँचा बना करके इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करता है।

बेटा! आज मैं तुम्हें अपने बहुत सूक्ष्म चिर देता हुआ यह उद्गीत गा रहा हूँ कि प्रत्येक मानव की यह कल्पना रहती है कि मैं स्वर्ग में चला जाऊं। स्वर्ग वहीं प्राप्त होता है जहाँ जीवन क्रियात्मक रूप में निद्वन्द होता है, निष्कामकर्मी होता है और जिसके कर्म में महानता की प्रतिभा होती है, वही मानव अपने जीवन को ऊँचा बनाता है, उसका जीवन पवमान बन जाता है इसी प्रकार ज्ञान रूपी अग्नि को जो मानव अपने अन्तःकरण में धारण कर लेता है तो वह पवमान बन करके यज्ञमान कहलाता है यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। आज का विचार हमारा यही सम्पन्न होने जा रहा है, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

७ आचार संहिता की पवित्रता ०४ ०१ १९९१

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वे परमपिता परमात्मा अननतमयी है और उस परमपिता परमात्मा की महिमा का हम सदैव वर्णन करते रहते हैं प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान सूत्र में पिरोया हुआ है जैसे नाना प्रकार के मनके सूत्र में पिरोने से वह माला बन जाती है इसी प्रकार वेदमन्त्र, जिसमें ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है, वह एक ही सूत्र में पिरोया हुआ है। वेद का मन्त्र उद्गीत गाने वाला प्रयः जब ओ३म् की ध्वनि के साथ उद्गीता गाता है तो वह वेदमन्त्रों की ऋचा को ध्वनित करता रहता है। इसीलिए जितना भी विषय वेदमन्त्र में निहित रहता है चाहे वह विज्ञा में हो, चाहे वह आध्यात्मिक विज्ञान में हो, परन्तु ओ३म् रूपी शब्द अथवा उस ब्रह्म सूत्र में पिरोया हुआ है और यहद वह सूत्र से विच्छेद हो जाता है तो संसार का प्रत्येक क्रियाकलाप उससे भिन्न हो जाता है।

विचार आता रहता है कि हम प्रायः उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान के ऊपर सदैव विचार-विनिमय करते रहें। और अपने जीवन को क्रियात्मक बनाते रहें। जब तक हमारा जीवन क्रियात्मक नही बन पाता तब तक हम उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान से प्रायः वंचित रहते हैं मानो उससे दूर रहते हैं तो इसीलिए हमारा क्रियाकलाप पवित्रतव में होना चाहिए बेटा! आज का हमारा वेदमन्त्र हमें भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रेरणा दे रहा है और हम उससे प्रेरित हो करके प्रायः अपने में ध्यानावस्थित होते रहते हैं जिससे हमारा जीवन एक महानता में रमण करता रहे। हमारे यहाँ प्रत्येक मानव परम्परा से उड़ाने उड़ता रहा है मेरा जीवन महानता में रमण करना चाहिए। और सुखद होना चोहिए। प्रत्येक मेरी पुत्री भी यही चाहती रहती है कि मेरा जीवन आनन्दित और सुखद होना चाहिए, मेरा जीवन अन्धकार में न चला जाएं मैं सदैव प्रकाश में रत्त हो जाऊं। मानव अपने में गार्हपथ्य अग्नि और ब्रह्म चिन्तन करता हुआ कहता है कि हे प्रभु! आपके ब्रह्म सूत्र में हम पिरोऐ हुए हैं तो हम परमपिता परमात्मा की महती और उसका मनन और चिन्तन करने के लिए तत्पर रहते हैं। प्रातःकाल में उसका चिन्तन और मनन करते कहते हैं कि हे प्रभु! आप तो सर्वज्ञ है, आप इस ब्रह्मारड का नेतृत्व करने वाले हैं हे प्रभु! इसीलिए हम तेरी महिमा और आनन्द में रमण करना चाहे हैं।

इस प्रकार वह चिन्तन करने वाला जिज्ञासु ब्रह्म का चिन्तन करता है और कहता है कि हे प्रभु! तेरे अग्रिम भाग में भी और दक्षिण भाग में भी पश्चानाम् भू वरणाम् और उत्तरायण में आप विद्यामन हैं, ध्रुवा और ऊर्ध्वा में भी आप ही गमन करने वाले हैं। मानव प्रातःकाल ब्रह्म का इस प्रकार चिन्तन करता है और वह ब्रह्म सूत्र में रमण करने लिए तत्पर होता है तो ब्रह्मा में ही वह समाधिष्ट हो जाता है। वे परमपिता परमात्मा अनूठा है, वह विचित्र है जो सर्वत्रता में, कण-कण में व्याप्त रहता है। हमें उसे इसी प्रकार स्वीकार कर लेना चाहिए। देखो, ब्रह्म के पश्चात वह देव पूजा में रमणाक रता है देवता उन्हें कहते हैं जो अपने में देव प्रेरणा देने वाले है। जब हम अग्नि के ऊपर अनुसन्धान करते हैं तो अग्नि हमारा देवता बन करके रहती है और जब हम पृथ्वी के ऊपर अन्वेषण करते हैं तो पृथ्वी हमारा देवता बन के रहती है और जब हम आपो के ऊपर अध्ययन करते हैं तो वह ऐसा अनुपम देवता है कि जिसके गर्भ में सदैव हम निहित रहते हैं यह सर्वत्र देवताओं से घिरा हुआ हमारा मानवीय जीवन कहलाता है। हमें देवतव को अपने में धारण करते हुए, मानो देवता की प्रतिभा को जानते हुए देवता का पूजन करना चाहिए।

मैंने कई कालों मे वर्णन करते हुए कहा है कि देने वाले को देवता कहते हैं जितने देवता हैं चाहे वह जड़वत हैं, चाहे वह चैतन्य हैं जैसे माता है, ब्रह्मणाम् पितर देवतवम्, यह सर्वत्र देते रहते हैं। इसीलिए हमारा वेद का मन्त्र कहता है कि हमें देव पूजा करनी है। और उसे हम देव पूजा के रूप न दे करके पितरयाग भी कह देते हैं क्योंकि पितरों की सेवा करना हमारा कर्तव्य है।

वैश्वानर अग्नि

आज मैं तुम्हें वेद के ऋषि की आभा में ले जाना चाहता हूँ जहाँ हम देवतव को प्राप्त करते हुए सागर से पार होने का प्रयास करते हैं बेटा! मैं उद्गीत गाने के लिए सदैव तत्पर रहा हूँ। वैश्वानर नाम की अग्नि के पूजन की चर्चा चल रही थी कि वैश्वानर नाम की अग्नि कितनी भव्यता में रमण करने वाली है। वैश्वानर नाम की अग्नि वह कहलाती है जिसमें गृह से उपराम होने वाला देवतव को प्राप्त होने की कामना करता है और वह कहता है कि मेरे हृदय में जो दुरिता विचार है, उन्हें मैं उससे दाह करने के लिए तत्पर रहता हूँ। वैश्वानर नाम की अग्नि को हमारे यहाँ आह्वनीय अग्नि भी कहते हैं। वह मन्त्र का उद्गीत गा करके कहता है कि हे अग्नि! आ तू मेरे समीप आ करके प्रकाश दे और उसका यज्ञशाला में आह्वान करके उसे प्रदीप्त करके कहता है कि हे अग्नि! आ तू मेरे अन्तर्हृदय में प्रवेश हो जा जिससे मेरा जीवन प्रकाश में रत्त हो जाएं। हे अग्नि स्वरूप! तू परमपिता परमात्मा है, तू मेरे अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जा।

बेटा! जब वह इस प्रकार अग्नि को आह्वान करता है तो अग्नि उसके समीप आ जाती है। अग्नि देवतव को प्रसार करता है। जैसे माता के गर्भस्थल में देखो, अग्नि की उष्णा बन करके शिशु को प्रकाशित करती है और शिशु को तेजोमयी बनाती रहती है। माता के गर्भस्थल में जब वह अग्नि प्रदीप्त होती है। तब वह अपने गर्भस्थल में रहने वाले शिशु को अग्नि का चयन कराती है और उस अग्नि के उष्णाता को प्राप्त करता हुआ वे परमपिता परमात्मा, निर्माणवेत्ता, निर्माण करने लगता है। मेरे प्यारे! मैं उद्गीत गा रहा था कि गार्हपथ्य नाम की अग्नि के पश्चात उस अग्नि को आह्वनीय या वैश्वानर नाम की अग्नि भी कहते है। वैश्वानर नाम की अग्नि विद्यालयों में प्रदीप्त हो करके सर्वत्र आचार्यों को आचार संहिता के रूप में परिणत कर देती है।

महाराजा अश्वपति की आचार संहिता

बेटा! आचार्य के यहाँ ही नही, राजा के यहाँ भी एक आचार संहिता होती है। मुझे वह काल स्मरण आता रहा है कि जिस काल में राजा स्वयं कृषि का उद्यम करते उसके अन्न को ग्रहण करके राष्ट्रवाद को ऊँचा बनाते रहे हैं जब तक राजा की आचार संहिता नही बन पाती तब तक राष्ट्र कदापि ऊँचा नही बनता। राजा को चाहिए कि अपनी आचार संहिता नही बन पाती तब तक राष्ट्र कदापि ऊँचा नही बनतां राजा को चाहिए कि अपनी आचार संहिता को ऊँचा बनाएं और राष्ट्र उसमें ओत-प्रोत हो जाता है बेटा! मुझे स्मरण है कि भगवान मनु ने भी इसी प्रकार आचार संहिता का वर्णन किया है राजा सगर, महाराजा दिलीप इत्यादियों की क्रियात्मक में आचार संहिता रही है। इसी प्रकार महाराजा अश्वपति के यहाँ आचार संहिता बनी। वह आचार संहित क्या थी कि प्रातःकालीन अपनी क्रियाओं से निवृत हो करके वह कृषि उद्यम करते थे और उसे बदले जो अन्न इत्यादि आता उसे पान करके अपने राष्ट्र का क्रियाकलाप करते। कामधेनु गऊ के दुग्ध का आहार करना राजा की आचार संहिता बनी। देखो, प्रातःकालीन अग्निहोत्र करना, अग्न का चयन करते हुए देव पूजा और ब्रह्मयाग वह सर्वत्र राष्ट्र की आचार संहिता कहलाती है बेटा! इसी आभा में जब प्रत्येक मानव और राजा की आचार संहिता बन गइ तो जानो की राष्ट्र का कल्याण हो गया है और राष्ट्र का प्रत्येक प्राणी अपने में सुख का अनुभव करता रहता है।

महाराजा अश्वपति का जीवन मुझे प्रायः स्मरण आत रहा है उनकी क्रियात्मकता बड़ी विचित्र रही है। बेटा!

मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय हमारे पूज्यपाद गुरुदेव बोले कि हे ब्रह्मचारियों! भ्रमण करने चलें। भ्रमण करते हुए मगध राष्ट्र में कात्यायन के गृह में वास किया और वहाँ से और वहाँ से प्रातःकाल में भ्रमण करते हुए महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में पंहुचे। महाराजा अश्वपति ने कहा क आईए भगवन्! कुछ भोज्य ग्रहण कीजिए। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि नहीं, राजन तुम्हें प्रतीत है कि हम राष्ट्र का अन्न ग्रहण नही करते हैं क्योंकि राष्ट्र का अन्न दूषित होता है। वह रजोगुण, तमोगुण से सना हुआ अन्न होता है, इसीलिए हम उसको ग्रहण नही कर सकते। पूज्यपाद गुरुदेव ने जब ऐसा कहा तो राजा ने कहा कि हे प्रभु! मेरा अन्न पवित्र है, अतः आप उसे पान कीजिए। आप मेरे यहाँ अतिथि बन करके आए हैं इसीलिए हमारा कर्तव्य है कि हम आपका पूजन करें। पूजन का अभिप्रायः है कि हम आपके अन्न इत्यादि से तृप्त करें।

राजा ने कहा कि-प्रभु! मैं स्वयं कृषि उद्यम करता हूँ और उससे जो अन्न इत्यादि उत्पन्न होता है, उसें मैं पान करता हूँ मेरे यहाँ एक नन्दिनी गऊ है, मैं उसी के दुग्ध द्वारा अपने आहार को पवित्र बनाता रहता हूँ और राष्ट्र के क्रियाकलाप में रत्त रहता हूँ। मैं और मेरी देवी, हम दोनों प्रातःकालीन ब्रह्मयाग करते हैं, ब्रह्म का चिन्तन करते हैं और ब्रह्म को अपना सूत्र बना करके उसकी उपासना करते हैं हम प्रातःकाल याग करते अग्नि के मुखारबिन्दु में स्वाहा कहते हूत करते रहते है। जिससे हमारा जीवन, हमारी मानवीयता पवित्र बन जाए। अग्नि ही प्रकाश का द्यौतक है, अग्नि ही प्रकाश का देने वाली है अग्नि हमारे हृदयों में प्रदीप्त रह करके वाणी रूप बनती है जिससे वाणी का वृत उत्पन्न होने लगता है और वह उद्गीत गाने लगता है मेरे पुत्रों! जब ऋषि को यह वर्णन कराया गया तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। राजा ने कहा कि-प्रभु! मेरे गृह का ऊर्ध्वा भाग यज्ञ की अग्नि से धुन्ध में परिणत हो जाता है। वही गृह पवित्र होता है जिसमें याग के मन्त्रों का उद्गीत गाया जाता हो। जब राजा ने यह कहा तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने ब्रह्मचारियों से कहा हे ब्रह्मचारियों! तुम इस अन्न को ग्रहण करो, यह अन्न पवित्र है। तो महाराजा अश्वपति और उनकी देवी ने उन्हें स्वतः अन्न का पान कराया और अन्नाद को पाकर वह प्रसन्न हुए।

उद्गीत गानक का विचार यह है कि राजा की आचार संहिता पवित्र होनी चाहिए और राजा के यहाँ ममता मोह नही होना चाहिए। यदि राजा की आचार संहिता में पुत्र या पुत्री का मोह गा हया तो वह न्यायालय में न्याय नही कर सकता। देखो, सतोयुग के काल में भगवान मनु के वंश में एक बड़े महान राजा हुए हैं और उनका नामकरण रोहिणी मनु कहलाता था और उनकी आचार संहिता बड़ी पवित्रता में रत्त रहती थी। आचार संहिता को ले करके वह चिन्तन और मनन करते रहते थे। जब उनकी देवी, पुत्र पुत्रियाँ सब विद्यमान होते तो उनको वह वेदमन्त्र उपदेश दिया जाता कि राजानाम् ब्रह्वे व्यस्तम देव भू वरुणाम पुत्रां भू कृतं देवत्वाम् इस वेदमन्त्र का उद्गीत गा करके राजा कहते हैं कि हमें किसी एक दूसरे से मोह नही करना चाहिए अन्यथा हमारी राष्ट्रीय परम्परा समाप्त हो जाएगी। वेदमन्त्र कहता है कि कर्तव्य पालन करो। वह कर्तव्यवाद ही मानव को ऊर्ध्वा में ले जाता है और यदि कर्तव्यवाद नही होता तो वह राष्ट्र राजा नही होता और न राजा के राष्ट्र में प्रजा पवित्र बनेगी। बेटा! भगवान मनु के वंश में जितने राजा हुए हैं वे सर्वत्र इस प्रकार की धारणा बनाए हुए अपने में कर्तव्यवाद कापालन करते रहे हैं।

निर्मोही

मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय कौतुक नाम के उनके राजकुमार भ्रमण करे हुए कौटिल्य बटुक मुनि के आश्रम में पंहुचे। कौटिल्य बटुक मुनि महाराज ने उनका स्वागत किया और कहा कि हे ब्रह्मचारी! आप कौन हैं, तुम्हारे पिता का नामोकरण क्या है और तुम्हारी नगरी कहाँ हैं? राजकुमार ने कहा कि-प्रभु! मेरे पिता का नामोकरण निर्मोही है, माता का नाम भी निर्मोही है और राष्ट्र का नाम भी निर्मोही कहलाता है और मेरा नाम भी

निर्मोही ही है कौटिल्य वटुक मुनि ने कहा कि हे राजकुमार! देखो, निर्मोही तो वह होता है जिसे किसी से मोह-ममता न हो। राजकुमार ने कहा-प्रभु! यह तो परीक्षा का विषय है। आप इसकी धारणा बना करके अपने में अनुभव कीजिए। जब राजकुमार ने यह कहा तो ऋषि ने स्वीकार कर लिया।

देखो, राजकुमार तो ऋषि के आश्रम में अध्ययन करने लगे और देखो, ऋषि ने वहाँ से गमन किया। अपने में चिन्तन करते हुए, ऋषि भ्रमण करते हुए जब राजा के समीप पंहुचे तो राजा ने अपने स्थान को त्याग दिया कि आईए ऋषिवर! विराजिए। हमारे यहाँ यह नियमावली रही है कि राजा, ऋषि अथवा ब्रह्मवेता को आते देख करके अपनी राजस्थली को त्याग देते है। क्योंकि जो सन्यासी महापुरूष होते हैं, तपस्वी होते हैं, उनकी आचार संहिता राष्ट्रीय प्रणाली से ऊर्ध्वा में गमन करती है। हमारे यहाँ जितने भी ऋषि-मुनि रहे हैं, वह चिन्तन करने वाले हुए हैं। राजा जब भी किसी आपतकाल में ऋषि-मुनियों के समीप पंहुचते तो उनसे वह शिक्षा ले करके और वे जो मार्ग देते हैं, उसी के अनुसार राजा अपने मार्ग का स्पष्टीकरण करता रहा है।

मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण आता रहा है कि जब महर्षि कौटिल्य वटुक जी महाराज राजस्थल पर विद्यमान हो गएं तो राजा ने नतमस्तक हो कर कहा कि कहो भगवन! आज कैसे आगमन हुआ है? मैं बड़े आश्चर्य में हूँ क्योंकि राजा के यहाँ जब महापुरूष आता है तो महापुरूष पूर्व सूचना देता है कि मेरा आगमन होना जा रहा है हे प्रभु! आपका आगमन हुआ है और आपकी कोई सूचना नही हैं। इसके मूल में, इसके गर्भ में कोई न कोई वाक्य विद्यमान है, हे प्रभु! मुझे वर्णन कराईए कि आपका आगमन कैसे हुआ? ऋषि ने कहा कि तुम्हारा एक राजकुमार भ्रमण करते हुए मेरे आश्रम में पंहुचा है। आश्रम के पिछले भाग में वह है जिसमें सिंहराज रहते हैं। एक सिंहराज ने उस राजकुमार के दो भाग कर दिए हैं मेरी इच्छा यह है कि उसको गृह में ला करके उसका विधिवत दाह संस्कार होना चाहिए। क्योंकि मैंने सिंहराज से उसके शव को लेकर अपने आश्रम में स्थिर कर दिया है।

उस समय राजा ने कहा कि हे प्रभु! आप तो वेदज्ञ महापुरूष हैं और वेद के मर्म को जानने वाले हैं हे प्रभु! वेद तो यह नही कहता, जो आप उद्गीत गा रहे हैं जीवनाम् भू वरुणाम् जीवन् ब्रह्मे जीवाम् भू वरुणा३ ब्रह्मः भोगना प्रतिकृतः देवाः वेद का यह मन्त्र तो प्रभु! यह कहता है कि जिस जीव का जो भोजन है और वह जीवन उसे पान करता रहता है। एक मानव जीवन सत्ता को प्राप्त करने के लिए, अपने मे जीवन शक्ति को सिंचन करने के लिए नाना प्रकार के परमाणुओं के द्वारा अपने भोज्य का निर्माण करता रहता है और प्राण भोगतव्य कहलाता है। प्राणी उसका भोक्ता बन करके, उससे अपने में तृप्त होता रहता है। यह प्राण ही सर्वत्रता को निगल जाता है और यह भोजन प्राण के प्राणों में परिणात होता रहता है हे ऋषिवर! आपको तो प्रतीत है कि वेद का मन्त्र यह कहता है कि प्रत्येक परमाणु में जीवन सत्ता विद्यमान है आपको तो यह प्रती है कि आप तो उस मार्ग से हो करके ही गमन करते रहे हैं, जैसेस वायु वेग में रमण कर रहा है जब भी आप को क्षुधा लगती है तो आप प्राणायाम करते हैं और वायुमण्डल से उन परमाणुओं को अपने में चिन्तन कर लेते हैं, जिनमें प्राण सत्ता विद्यमान होती है। ऋषिवर! हमारे यहाँ जो भी साधक बनता है वह प्राणायाम के द्वारा उन सब तत्त्वों को अपने में ग्रहण करता रहता है, जिनसे उसकी साधना पवित्रता को प्राप्त होती रहे। हे प्रभु! वह जीवन सत्ता वायुमण्डल में रमण करती रहती है शीतली प्राणायाम करने वाला जल का संचय कर अपने में जल की तृप्ति कर लेता है हे ऋषिवर! इसी प्रकार यह जीवन सत्ता है।

परमपिता परमात्मा ने जब सृष्टि का सृजन किया तो उस प्रभु ने एक पौधे में उत्पन्न किया और उस पौधे में दो प्रकार के अन्न होता है। एक अन्नको मेरी माता भोजनालय में तपाती रहती है और इस अन्नाद के निचले भाग को पशु पान करता हुआ, जीवन सत्ता को प्राप्त करता हुआ, वह हमें दुग्ध का आहार कराता हे माता! अन्नाद का

आहार कराती है क्योंकि उसमें जीवन सत्ता है उसी से हमारे शरीर का निर्माण होता है वेद का मन्त्र कहता है कि आख्यिका, कहती है कि इसी भोजन में प्राण सत्ता विद्यमान रहती है जैसे अन्न हमारा भोजन करके रहता है, हमारे शरीर को ऊर्ध्वा में गमन कराता है, इसी प्रकार मेरे पुत्र का शरीर भी सिंहराज का भोजन है, गमन कराता है, इसी प्रकार मेरे पुत्र का शरीर भी सिंहराज का भोजन है क्योंकि आत्मा का विनाश नही होता, आत्मा सदैव चेतनामय बनी रहती है, इसीलिए वह शरीर जिन परमाणुओं से निर्मित हुआ है, वह सिंहराज को भोजन बन गया, हे ऋषिवर! आप तो उन वाक्यों को जानते हैं क्योंकि आप तो महान तपस्वी हैं हे प्रभु! वह जो सिंहराज का भोजन बन गया है, वही उसका दाह है और सिंहराज का भोजन बनने पर उसके शरीर का कोई अस्तित्व नही रह पाता है आत्मा क्योंकि चित्त के मण्डल में प्रवेश करती रही है और उसका चित्राम् हृदयम् ब्रह्मे चित्रामशतम् ब्रह्मा चित्रों रथम ब्रह्मे कृताम् देवाः हे ऋषिवर! मानो वह चित्रों में रमण करने वाला वृत है हे ब्रह्मणे आप यह जानते हैं कि शरीर नश्वर कहलाता हे प्रभु! आत्मा का ह्रास नही होता, यह आत्मा नाना प्रकार के संस्कारों को ले करके गमन कर जाता है, चित्त के मण्डल में आत्मा प्रवेश कर जाता है। वह शरीर सिंह राज का भोजन बन गया है और उस शरीर को सिहंराज को पान करने दीजिए। इस प्रकार राजा के वाक्यों का श्रवण करके मौन हो गए, ऋषि ने मन में कहा कि यह राजन तो वास्तव में निर्मोही है, यह ज्ञानी है और ब्रह्मवेत्ता है।

इसीलिए मुनिवरों! मैं उद्गीत गा रहा हूँ कि राजा वह होता है जो ब्रह्मचेत होता है, धर्म के मर्म को जानने वाला होता है वह रूढ़ियों से दूर रहता है। जो ब्रह्मज्ञानी होता है उसके समी रूढ़ियाँ नही आया करती हैं। इसीलिए राजा रूढ़ि से पृथक होना चाहिए। राजा वही कहलाता है जो निर्मोही हो और जो ईश्वर के नाम पर भी अपने राष्ट्र में रूढ़ि नही पनपने देता। इसीलिए राजा को ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए। ब्रह्मनिष्ठ हो करके वह अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाता है मेरे प्यारे! जब इसप्रकार की आचार संहिता राजाओं के यहाँ होती है तो उनका राष्ट्र भी निर्मोही बन जाता है, स्वार्थपरता से दूर हो जाता है। जहाँ समाज में कर्तव्यवाद की तरंगें ओत-प्रोत होती हैं और राजा कर्तव्यवाद में होता है तो राष्ट्र में प्रकाश ही प्रकाश रहता है, उसका प्रत्येक प्राणी एक दूसरे के प्रकाश में रह रहने वाला है उसका प्रत्येक प्राणी एक दूसरे के प्रकाश में रत्त रहने वाला है विचारवेत्ता वेद के मर्म को जानने वाले ऋषिवर कहते हैं कि राजा को निर्माही होना चाहिए। और वह कैसा निर्मोही हो? देखो, जिसको मोह न हो, वह प्रत्येक दशा में अपने जीवन को वेदज्ञ बनाने वाल हो। वेद के मर्म को जानने वाल महान कहलाता है मेरे पुत्रों! जो आह्वनीय बन करके माता के गर्भ में बालक को प्रकाशमान बनाती है, शिशु को महान बनाती है, मानव की और राजाओं की वाणी में आचार संहिता बन करके उसे निर्मोही बनाती है और उसे ब्रह्मज्ञानी बना करके माता से दूर कर देती है, इतना कर्तव्यवाद राजा के समीप होना चाहिए कि प्रत्येक प्राणी राजा के राष्ट्र में निर्द्वन्द्व हो करेक विचरण कर सके।

मुझे बहुत से राजाओं के क्रियाकलापों को दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। बेटा! हम आज उस क्षेत्र में न जाते हुएउ केवल यह कि महात्मा कौटिल्य बटुक ऋषि महाराज ने अपने में मौन होकर कहा कि हे राजन! आप उसका दाह नही करेंगें? राजा ने कहा कि हे ऋषिवर! उसका दाह तो वही है जो किसी का भोज्य बन करके रहे। तुम्हें यह प्रतीत है कि जिस समय अग्नि में दाह कर दिया जाता है तो अशुद्ध परमाणुओं को अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वायु उन्हें गमन कराती रहती है तो जलों में रहने वाले प्राणी उन अशुद्ध परमाणुओं को अपने में निगल लाते हैं और उसका शुद्धिकरण करते रहते हैं वायुमण्डल में बहुत से प्राणी इस प्रकार के भ्रमण करते रहते हैं जो अशुद्धता को निगलते रहते हैं जैसे सर्प इत्यादि योनियां हैं वह भी उस अशुद्धता को निगल जाते हैं जो वायुमण्डल में होती हैं और अपने में उसका शुद्धिकरण करते रहते हैं इसी प्रकार पक्षी है,

वृत्त योनि हैं, जिन्हें हम स्थावर सृष्टि कहते हैं वह स्थावर सृष्टि बेटा! उसका शुद्धिकरण करती रहती है अशुद्धता को सूक्ष्म बना करके उसे त्यागती रहती है और समुद्रों में रहने वाले वे प्राणीमात्र हैं उनका शुद्धिकरण वह करते रहते हैं बेटा! यह प्रभु की बड़ी विचित्र माल है एक दूसरे में पिरोया हुआ यह जगत है। विचार-विनिमय क्या कि प्राणी एक दूसरे में पिरोया जाता है एक दूसरे में ओत-प्रोत है बेटा! एक दूसरे में परिणत हो रहा है उस माला को धारण करके मानव अपने में धन्य हो जाता है।

महात्मा कौटिल्य वटुक मुनि महाराज वही विद्यमान रहे। इस सम्बन्ध में शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें। आज का विचार-विनिमय क्या कि मानव, मानव में एक माला बना हुआ है, और वे एक दूसरे की प्रतिभा में प्रतिष्ठित रहते हैं, जिससे यह जीवन एक दूसरे की आभा में परिणत हो जाए। वेद का मन्त्र एक दूसरे में गुंथा हुआ होने से ऋचा बन जाती है मनन करने के लिए मन्त्र बन जाता है और मन्त्र आनम् ्रहे जो मन्त्र को मनन करके उसमें से ज्ञान को अपने में संचय करता है वही अपने में धारण करा देता है। मेरे प्यारे! आज का विचार-विनिमय केवल यह कि आचार संहिता पवित्र हो, जिससे मानव पवित्रता को धारण करता रहे। इस सम्बन्ध मंक राजा और ऋषि दोनों का आध्यात्मिक विचार क्या है, इसको कल प्रगट करेंगें। आज का विचार समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

८ व्यष्टि में समष्टि ०५ ०१ १९९१

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना परमपिता परमात्मा की अनन्तमयी महिमा का वर्णन आता रहता है क्योंकि उसका यह अनन्तमयी ब्रह्माण्ड प्रायः अनुपम है। इस संसार को मानव जब मापने लगता है तो मानव का जीवन समाप्त हो जाता है परन्तु और शेष रह जाता है इसीलिए हम परमपिता परमात्मा जो अनन्तमयी है अथवा जो महानव और पवित्रतम कहलाता है, इस महान देव की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहें। वह गुणाध्यानम् हैं इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तमयी धारा के ऊपर प्रायः विचार-विनिमय करते रहें।

ऋषि-मुनि जब भी अपनी एकान्त स्थली में विद्यमान होते रहे हैं। तो वह नाना प्रकार की ऊर्ध्वा में उड़ाने उड़ते रहते है। और उनकी उड़ाने बड़ी विचित्र रही है। आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान से ओत-प्रोत उनका जो अनुपम विचार है वह एक महान कहलाता है जिस विचार को ले करके मानव नाना प्रकार की प्रतिभाओं का प्रायः वर्णन करता रहा है और नाना प्रकार के याग, नाना प्रकार का उनका संकल्पमयी जीवन बड़ा विचित्रतम् बन करके रहा है। इसीलिए परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसके अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान के ऊपर हमें प्रायः अपनी आभा में सदैव रत्त रहना है।

टाओ, मुनिवरों!। आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है कि पव वरुणाम् ब्रह्म कृतं वरणअसुतम ब्रह्मा वृताः वे परमपिता परमात्मा महान व्रती है और व्रतों का स्वामी कहलाता है। जितने भी संसार से व्रती है वे सर्वत्र उस परमपिता परमात्मा के अर्न्तगत हैं और उसी में वह रमण करते रहते हैं क्योंकि वह पुरोहित है और पराविद्या के देने वाले हैं, जिससे मानव का अन्तरात्मा अथवा अन्तर्हृदय में एक महान प्रकाश की प्रतिभा दृष्टिपात करने लगे, इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महानता के ऊपर सदैव अपने में, अपनेपन को चिन्तन में लाने का प्रयास करते रहे हैं मेरे पुत्रों! आज का हमारा वेदमन्त्र कहीं याग के सम्बन्ध में, कहीं संस्कारों के सम्बन्ध में कहीं जगत को कल्पवृक्ष के रूप में और कहीं इस संसार को देने-लेने की व्यापारशाला के रूप में और कहीं विच्छेद और मिलन के सम्बन्ध में, भिन्न-भिन्न प्रकार की आभा प्रगट कर रहा है।

थ्वचार आता रहता है कि मानव रूदन कर रहा है, अपने में व्याकुल हो रहा है, परन्तु वह व्याकुल इसीलिय है कि अपने में विच्छेद हो गया। जब मानव का अपने में विच्छेद हो जाता है तो वह अन्धकार में परिणत हो जाता है। इसीलिए वेदों की प्रतिभा हमें अग्रणीय बनाती रहती है कि मानव को अपने जीवन की धाराओं में रत्त रहना है। और वह जो गुणाध्यानम् है, उसके गुणों को अपने में धारण करना है क्योंकि गुणों को धारण करने वाला ही संसार में अग्नि का नेतृतव करने वाला है और वही ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ता हुआ ज्ञान और विवेक में प्रविष्ट हो जाता है और वह अपने में, इस संसार की उपासना कर रहा है, पवमान कह करके उदगीत गा रहा है। वह वर्चोसि कह करके वर्चस बन रहा है। मेरे प्यारे! यहाँ नाना प्रकार की उड़ान उड़ने वालों ने अपने विचारों को व्यक्त करते हुए जो कहा है, मैं उसी अग्नि की धाराओं में तुम्हें ले जाना चाहता हूँ हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की अग्नियों का चयन होतारहा है जब मैं आयुर्वेद की आभा में प्रविष्ट होने लगता हूँ तो यह भिन्न-भिन्न प्रकार की अग्नियां हमारे समीप आ करके अपने गुणों का वर्णन करती रहती है।

स्वर्णिका बूटी

आत्म दर्शन

महात्मा अश्विनी कुमार जब एकान्त में विद्यमान होते तो भयंकर वनों के औषधि स्वप्न में आ करके अपने गुणों का प्रायः वर्णन करते रहते थे और यह कहते थे कि हम इस रूग्णा की अमुक औषध हैं। जब स्वप्न में भी औषधियां उसके समीप निहित हो करके अपने गुणों का वर्णन कर रही हैं तो वह औषधि विज्ञान कितना महान है और उसके ऊपर कितना तन्मय होना होता है इसी प्रकार जो मेरी प्यारी माताएं पवित्र हृदय से ब्रह्म में विचार बना करके सन्तान को जन्म देना चाहती हैं, वे वैश्वानर नाम की अग्नि में चली जाती हैं। वह आह्वानीय नाम की अग्नि में पुट लगा देती हैं जो जिस माह में माता को कौन-सा साकल्य और औषध को ग्रहण करना है, यह औषधियां उस माता के स्वप्न में अपने गुणों का वर्णन करती रही है। और यह कहती रही हैं कि अमुक नक्षत्र में हमारा पृथ्वी से विच्छेद होना चाहिए। जैसे स्वर्णिका एक बूटी कहलाती है तो वह स्वप्न में कहती है कि पुष्य नक्षत्र और राहिणी दोनों का जहाँ मेल होता है उस समय पृथ्वी से हमारा विच्छेद करके उसे स्वर्ण के पात्र में खरल करके उसका माता छटे माह में पान करने वालीहो। बेटा! महात्मा दधीचि तो इस प्रकार की औषधियों का पान करके अपने जीवन को व्यतीत करते थे। बारह-बारह वर्ष तक वे औषध विज्ञान के ऊपर अपने शरीर को निर्धारण करते रहे और वायु का सेवन करते रहे जिससे उनकी साधना, उनका आध्यात्मिक विज्ञान एक महानता में परिणत होता रहा है।

बेटा! वैश्वाना और आह्वनीय नाम की अग्नि की चर्चा भी हो रही थी आह्वनीय नाम की अग्नि वह कहलाती है, जिसका मानव प्रातःकालीन आह्वान करता है आह्वान का अभिप्रायः हय हे कि हे अग्नि! आ तू मेरे अन्तःकरण में प्रविष्ट हो जा। हे अग्नि स्वरूप परमपिता परमात्मा वेदज्ञ अग्नि अग्न्याध्यानम् ब्रहे देवताओं की अग्नि बन करके तू देवताओं के हव्य पदार्थों को निर्मित करता रहता है। वह निर्माण करने वाला अग्नि देवत्वाम् देवा ब्रहाः देवहे तो इसीलिए उनका वैश्वानर और आह्वानीय नाम की दोनों अग्नि से वर्णन किया जाता है। ज्ञान के आह्वानीय नाम की अग्नि कहते हैं और विज्ञान उसे कहते हैं जो हमारे आह्वानीय अन्तर्हृदयों में समाहित रहता है। जो बाह्य और आन्तरिक जगत, दोनों का मिलान करता है उसकी हम ज्ञान कहते हैं।

प्रत्येक वस्तु के जिस क्रियाकलाप को प्रायः हम क्रिया रूप में लाना चाहते हैं, उस क्रियाकलाप में सार्थकता होनी चाहिए। उस क्रियाकलाप में विवेक और विडम्बना रूप अपने में धारयामि बनी रहे तो ऐसे ज्ञान, ऐसी विचारधारा को हम ज्ञाने रूप में वर्णन करते रहें। जानना और जान करके उसका उपयोग करने का नाम ज्ञान कहा जाता है। जैसे हम जानना चाहते हैं कि यह पृथ्वी क्या है क्योंकि इसी पृथ्वी पर जलाशय हैं और इसी पृथ्वी पर ही नाना प्रकार की सृष्टियां जैसे जंगम हैं, स्थावर हैं, उदभिज हैं और स्वेदज हैं, यह चारों प्रकार की सृष्टि इस पर विद्यमान हैं और वे समुद्र से अंगों में और पृथ्वी के गर्भ में भी निहित रहने वाली है परन्तु देखो, वह जो सर्व पृथ्वी पर और वह जो पृथ्वी के ऊपर क्रियाकलाप हो रहा है, वह ऐसा क्रियाकलाप है जिसको जानने वाला अपने में मौन हो जाता है और विचारता रहता है कि मैं परमात्मा के अनुपम जगत में विद्यमान हूँ परन्तु मैं उस अग्नि को अपने में धारण करना चाहता हूँ जिस अग्नि को ले करके मानव प्रकाश में रत्त हो जाता है। आओ, मेरे प्यारे! विचार-विनिमय केवल यह कि हमारे यहाँ ज्ञान और विज्ञान, आध्यात्मिक और भौतिक दोनों का समन्वय होता रहा है अथवा दोनों को एक दूसरे की आभा में मानव अपने को धारयामि बना लेता है।

बेटा! मैं आज तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ कि जिन क्षेत्रों में जाने से हमें वेद का ज्ञान होता है और हमे इस संसार में विवेक होता है कि यह संसारएक दूसरे में रत्त होता रहता है देखो, भगवानमनु ने नाना वंशज अयोध्या में राज्य करते रहे है। अयोध्या का निर्माण सबसे प्रथम भगवान मनु ने किया था और वह उस काल में समुद्र से कुछ ही दूरी पर थी, यह मुझे स्मरण है परन्तु जब मैं साहित्यिक चर्चा उद्गीत रूप में गाना चाह रहा था कि समुद्र के निकटतम भगवान मनु और उनके पुरोहित कालेत्वर ऋषि ने आठ चक्र, नौ द्वारों वाली

अयोध्या पुरी की स्थाना की। मेरे प्यारे! वहीं राज्य होता रहा है और वही राष्ट्रीय विचारधारा अपने में परिणत होती रही है। उसी मनु वंश के राजा के समीप कौटिल्य वटुक ऋषि महाराज ने कहा कि तुम्हारा एक ही पुत्र है और वह आश्रम में विद्यमान है उसका दाह कीजिए। तो राजा ने कहा कि ऋषिवर आप तो महान हैं और वेद के एक-एक मन्त्र के ऊपर अध्ययन करने वाले हैं और वायु का सेवन करते रहते हैं, परन्तु मुझे इस ममता के क्यों परिणत कर रहे हो। स्वयं ममता में परिणत हो रहे हो और मुझे प्रेरित कर रहे हो। प्रभु मैं इस ममता में जाना नही चाहता हूँ क्योंकि मुझे परमपिता परमात्मा ने इतना महान, इतना विशाल राष्ट्र दिया है जिसके ऊपर विचार-विनिमय करता रहूँ तो मेरा जीवन समाप्त हो जाएगा। मैं पुनः जीवन को भी धारण करूंगा तो उसके पश्चात भी मैं विचारता ही रहूँगा और मैं अपनी आचार संहिता और विज्ञान के ऊपर अध्ययन करता रहूँगा परन्तु यदि ममता में परिणत हो जाऊंगा तो आज मुझे में जो ममता है, कल भी वही ममता बनी रहेगी और उसी ममता में मेरा हृदय संकुचित हो जाएगा। मैं अपने को संकुचित हृदय में ले जाना नही चाहता हूँ मेरा हृदय विशाल होना चाहिए। मैं प्रभु से ऐसी प्रार्थना करता रहता हूँ।

व्यष्टि-समष्टि से योग

मनव का यह कर्तव्य है कि वह समष्टि से व्यष्टि में चला जाए और व्यष्टि से समष्टि में चला जाए परन्तु दोनों को अपने में विचारता रहे तो समष्टि में प्रवेष हो जाना चाहिए। संकीर्णता को व्यष्टि कहते हैं, जो अपने कटुम्ब का जी पालन करने वाला है और अपने शरीर तक वह पालना में लगा रहता है तो उसे व्यष्टि कहते हैं और जमो मानव अपने जीवन को ब्रह्मज्ञान में परिणत कर देता है और प्रत्येक इन्द्रियों से अपनेपन को ही नहीं संसार को विचारने लगता है, वह समष्टि हैं वह अन्त में योग में प्रविष्ट हो जाता है। दो वस्तुओं के मिलन को योग कहते हैं। जैसे महार यहाँ प्राण और मन का मिलन होना ही योग कहा जाता है। वह अन्त में योग में प्रविष्ट हो जाता है। आत्मा परमात्मा का मिलन होना ही योग है। जैसे प्रकृति और ब्रह्म के मिलान का नाम ही एक सृष्टि का विधान है हे प्रभु! जैसे चित्त की वृत्तियों को एक रूप में धारण करने का नाम ही साधना योग कहा जाता है। प्रभु देखो, मैं समष्टि में जाना नही चाहता हूँ यदि मैं ममता में हो जाऊंगा तो वह साधना नही बनती। यदि मैं न्यायालय में विद्यमान न्याय कर रहा हूँ और मेरे अन्तरात्मा की धाराएं न्याय को साकार रूप बना देती हैं तो वह हृदय की समष्टि कहलाती है, वहाँ हृदय की व्यष्टि समाप्त हो जाती है, समष्टि स्वरूप में प्रविष्ट हो जाती हैं और वह प्रगट रूप में मुझे अपने में प्रेरणा देती है।

इस प्रकार जब मनु वंश के राजा ने अपने उदगार प्रगट किए तो कौटिल्य मुनि ने मौन हो करके कहा कि हे राजन! मैं पुनः कुछ वार्त्ता प्रगट करने जा रहा हूँ कि यदि किसी का दाह कर दिया जाए तो उससे तुम्हारी समष्टि में कौन-सा अन्तर्द्वन्द्व आ जाएगा? राजा ने कहा कि हे भगवन! राजा वह होता है जिसके राष्ट्र में प्रत्येक प्राणी की रक्षा होती हो। हमारे वंशज अक्षवा मनु थे वह सूर्य के पुत्र कहलाते थे, सूर्यव्रती कहलाते थे। हमारे वे महान वंशज सूर्य की तपस्या में रत्त रहते थे, इसीलिए उन्हें सूर्य अमृता कहते थे। उनका यह कथन है कि समुद्र में जो परमपिता परमात्मा ने प्राणीमात्र को जन्म दिया है, मछली से ले करके जितने भी प्राणी मात्र हैं, उन सर्वत्र का किसी न किसी सार्थक उपयोग में लाने का अवृत होता है, वह अपने में जल के विषैले परमाणुओं को निगलते हैं तो इसीलिए देवाम् भू वरुणाम्, वे वे के मन्त्रों का उद्गीत गा करके यह कहते थे कि किसी भी प्राणी का ह्रास नही होना चाहिए, विनाश नही होना चाहिए। मछली को भी आहार देना चाहिए जिससे मछजली दूषित वायुमण्डल का शुद्धिकरण कर सके और प्रदूषध को समाप्त कर सके। इसी प्रकार भगवन! देखो, सिंहराज है। सिंहराज जब श्वास लेता है तो अपने आन्तरिक जगत से वह सात्विक तरंगें वायुमण्डल को देता रहता है हमारे यहाँ बहुत से प्राणी

इस प्रकार के होते हैं हे प्रभु! वनों मैं रहने वाला वह वनराज यदि राजा के राष्ट्र में नही रहेगा और उसकी रक्षा नही होगी तो उसका राष्ट्र व्यर्थ हो जाएगा। हे प्रभु! देखो, यहाँ किसी भी प्राणी का ह्रास नही होना चाहिए और यदि प्राणी मात्र का ह्रास होने लगता है तो तो उस समय राष्ट्रीय प्रणाली समाप्त हो जाती है हे प्रभु! जब वह सिंहराज का भोजन बन गया है तो उस भोजन को पान करने दीजिए। समष्टिवाद यह कहता है कि प्रत्येक प्राणी की रक्षा हो। उसने जो अपना भोज्य बनाया है, वह भोज्य उसका रहना चाहिए।

मेरे प्यारे! राजा की उन वार्त्ताओं को ग्रहण करते हुए मौन हो गएं ऋषि ने कहा कि हे राजन! वाक्य तो तुम्हारे यथार्थ हैं परन्तु उसके पश्चात भी हमारे हृदयों में एक आशंका यह बनी ही रहती है कि पुत्र एक रूप में माता का हृदय होता है और हृदय की रक्षा करनी ही चाहिए, हृदय से हृदय की रक्षा होनी चाहिए, राजा ने कहा कि हे ऋषिवर! देखो, राजा के लिए प्रत्येक प्राणी उसका हृदय होता है और वही उसकी मानवीयता को ऊँचा बनाता है इससे राष्ट्रीयता का निर्माण होता रहता है इौर वह जो राष्ट्रवाद को ऊँचा बनाता है इससे राष्ट्रीयता का निर्माण होता है और वह जो राष्ट्रवाद है, वह उसको महान बनाता है, इसीलिए प्रभु! मैं इस वाक्य को स्वीकार नही करूंगा। मेरे पुत्रों! जब राजा ने यह कहा तो अपने में शान्त हो गऐ। ऋषि ने कहा कि-प्रभु! आप तो धन्य है, आपका अध्ययन बड़ा महान है और अध्ययन के साथ में आपका जो निश्चय है वह निश्चयम् और भी महान है, आप निर्मोही हैं।

ऋषि ने यह विचार लिया कि पिता को मोह नही होता परन्तु माता के हृदय में वह वास करता है। माता को वसुन्धरा कहते हैं, इसीलिए वह वसुन्धरा अपने वसु को जानती है। राजा को त्याग करके ऋषि गमन करते हुए उनके राष्ट्रगृह में पंहुचे। गृह में देवी ने ऋषि का स्वागत किया और आसन दिया ऋषि आसन पर विराजमान हो गये। देवी ने नाना प्रकार के कुछ कन्द मूल पदार्थ जो स्वतः उपजे और निर्माणित हुए थे, वह अन्नाद के द्वारा ऋषि को प्रदान किए और कहा कि भगवन्! मेरे आतिथ्य को स्वीकार कीजिए। अतिथि उसे कहते हैं जो बुद्धिमान हो और अचानक आ जाए। आप मेरे अतिथि हैं अतः मेरे आतिथ्य को स्वीकार कीजिए, यह मेरा कर्तव्य है। ऋषि ने कहा कि हे देवी! मैं इस आतिथ्य को स्वीकार नही करूंगा जब तक मेरी वार्त्ता ग्रहण न की जाऐगी। देवी ने कहा कि-प्रभु! सिद्धान्त और वैदिक वाक्य यह कहता है कि सबसे प्रथम आतिथ्य को स्वीकार करो। उसके पश्चात वार्त्ता प्रगट हो। ऋषि ने कहा कि मेरा अन्तर्हृदय जिसको स्वीकार नही कर रहा है, मैं उसको ग्रहण नही करूंगा। देवी ने कहा कि-प्रभु! फिर तो हमारा अतिथि याग नही हो पाएगा। ऋषि ने कहा कि हे देवी! प्रवाहः कृतम् मेरी वार्त्ता स्वीकार करो। देवी ने कहा कि-प्रभु! उद्गीत गाईए मैं अनुचित वाक्य तो स्वीकार नहीं करूंगी।

ऋषि ने कहा कि हे पुत्री! मेरे यहाँ एक व्याघ्र ने तुम्हारी सन्तान को दो भाग कर दिए हैं और उसका दाह होना चाहिए। मेरी ऐसी भावना है। देवी ने कहा कि-प्रभु! आप मेरे आतिथय को स्वीकार करो और वह जो शरीर है, जो अप्रताम् भू कृतम् प्रह्वा वेद का वाक्य कहता है कि वह प्रह्वा है और वह सिंहराज का भोज्य हो चुका है उसे भोज्य होने दीजिए, परन्तु आप मेरे आतिथ्य को स्वीकार कीजिए क्योंकि अतिथि गृहस्वामियों का प्राण होता है, वह अपनी प्राण क्षुधा को अपने में धारा कर लेता है। हे प्रभु! आप मेरे अतिथि हैं। यदि मेरा अतिथि याग सम्पन्न हो जाए तो मैं जानूं कि मेरा गृह पवित्र हो गया है और मेरी भावना उसके लिए कटिबद्ध हो गई है। हे प्रभु! आप मेरे अतिथि हैं इसे स्वीकार करें।

मेरे प्यारे! ऋषि बड़े आश्चर्य मे आ गए कि मैं कुछ उच्चारण कर रहा हूँ और यह देवी कुछ उच्चारण कर रही है। ऋषि ने कहा कि हे देवी! मेरे वाक्य को तुम स्वीकार करो। देवी ने कहा कि-प्रभु! मैं स्वीकार इसलिए नही कर पाऊंगी क्योंकि भगवन्! इससे मेरा समष्टिपाद अन्धकार में चला जाएगा। और समष्टिवाद के अन्धकार में जाने से

मानव का प्राण चला जाता है मानव की मृत्यु हो जाती है। हे ऋषिवर! मृत्यु का अर्थ शरीर को त्यागना नही हैं। शरीर तो आज नहीं कल यह अवश्य चला जाएगा। परन्तु इसमें जिस ज्ञान को हमने उपार्जित किया है, ज्ञान और विज्ञान को जाना है, यदि उसकी मृत्यु हो गई तो भगवन्! हमारा प्राण चला गया, शरीर को कोई अस्तित्व नही रहता। ऋषि ने कहा कि देवी! मेरे वाक्य को तुम स्वीकार नहीं करोगी? उन्होंने कहा कि सम्भवं ब्रह्मणे व्रतम् देवत्वा, यह देव वाणी नही हैं ऋषिवर! इसीलिए मैं स्वीकार नही करूंगी। मेरा देव भावना यह है कि मेरे आतिथ्य को स्वीकार कीजिए, आप देवता हैं।

मेरे प्यारे! यह विचारधारा होती रही। अन्त में ऋषि ने कहा कि मैं आतिथ्य को स्वीकार नही करूंगा। देवी ने कहा तो प्रभु! आप जब मेरे इस वाक्य को स्वीकार न करोगे तो मेरा पुण्य समाप्त हो जाएगा और आपका जो पाप कर्म है वह मेरे गृह में छा जाएगा। क्योंकि जिस गृह आश्रम में ब्रह्मवेत्ता पुरूष आ करके अन्न से पीड़ित रहता है, वह गृह अशुद्ध होता है और वह अतिथि अपने पाप कर्मों को त्याग करके वहाँ से पुण्यमयी विचारधाराओं को अपने में धारण करके चलाजाता है अध्ययम ब्रह्मणा ब्रह्म ब्रहे कृतं देवाः प्रभु यह सिंहराज का भोजन है और मैं आपका आतिथ्य करना चाहती हूँ जिससे मुझे ज्ञान की प्राप्ति होगी, क्योंकि ज्ञान ही संसार में मानव को ऊर्ध्वा में ले जाता है। ज्ञान ही दूसरे रूप में विवेक बनता है और वह विवेक हर मानव को मोक्ष की पगडण्डी ग्रहण करा देता है, अन्त में सूक्ष्म और कारण शरीरों को जान करके मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

मेरे पुत्रों! जब देवी ने ऐसा कहा तो अपने में मौन हो गएं ऋषि ने कहा कि हे देवी! तुम समष्टि किसे कहती हो? देवी ने कहा कि इस संसार की मोह ममता की प्रतिभा में संकुचित रहने का नाम व्यष्टि कहलाता है और उस आभा से दूर जाने का नाम ही समष्टि कहलाता है। जैसे हमारे नेत्रों में समष्टि है और व्यष्टि है व्यष्टि में देखो, संकुचन है, उसमें पाप वृत्तियाँ हैं और यदि समष्टि में चले जाते हैं तो उसमें पुण्य है और उसमें महानता है, उसमें परमात्मा का अनुपम ज्ञान है। जब हमारे नेत्रों में समष्टि आती है तो वह अग्निमयी स्वरूप बन करके, जैसे अग्नि देवताओं का मुख बन करके यज्ञशाला में नाना प्रकार के संकल्प को ग्रहण करती है, इसी प्रकार हमारे नेत्रों का अग्निमयी स्वरूप, समष्टि में इस संसार को एक ही रूप में दृष्टिपात करता है। समष्टि रूप बना करके वह दृष्टि अग्निमयी बन जाती है। जैसे यज्ञशाला में समिधा अग्नि का ईंधन कहलाती है, इसी प्रकार मानव के अन्तर्हृदयों में जो मानव की आन्तरिक विचारधारा है, वह अग्नि का साकल्य और ईंधन बन करके महान समष्टि में ले जाता है।

मेरे पुत्रों! इस प्रकार अव्रतम् ब्रह्वे कृतम् अपने में यह समाधान होता रहा कि समष्टि किसे कहते हैं। एक मानव दर्शन का प्रश्न कर रहा है एक ही सूत्र है सर्वत्र उसकी विवेचना कर रहा है एक सूत्र आता है योगाम् ब्रह्वा कृतम् चित्राहम् ब्रह्वे कृताम् देखो, चित्त की वृत्तियों का निरोध करने का नाम समष्टि कहा जाता है। उसका निरोध करता हुआ उसके ऊपर शासन करता हुआ, उसको समाप्त करके प्रवृत्ति को ऊर्ध्वा में लाने का नाम समष्टि कहलाता है। मेरे प्यारे! समष्टि के रूप में रमण करते हुए ऋषि ने कहा कि हे देवी! अमृता ब्रह्मणे व्रत्म देवाः तुम अमृत हो, अमृता बन करके तुम अन्तर्हृदय को महानता की ज्योति में प्रविष्ट कराना चाहती हो, तुम धन्य हो। यह मेरा अन्तर्हृदय कहता है परन्तु मैं समष्टि को पुनः और जानना चाहता हूँ।

देवी ने कहा कि समष्टि वह कहलाती है जो मानव अपनी घ्राण इन्द्रियों को गन्ध का स्वरूप बना लेता है और पृथ्वी उसका देवता बन जाता है। पृथ्वी के गर्भ में क्या-क्या है मानो, कौन-कौन-सा खनिज और कौन-सा खाद्य विद्यमान है, जो उसकी गन्ध को जानने वालाहै, उसका पृथ्वी से जो समन्वय हो गया है, उसका नाम समष्टि कहलाता है। घ्राण इन्द्रियों को पृथ्वी का ही तो एक स्वरूप माना गया है इसीलिए देखो, पंच महाभूतों में पंच इन्द्रियां का समावेश हो जाने का नाम ही समष्टि प्रवृत्ति कहा जाता है। जिसको व्यष्टि से समष्टि में जाना होता है,

ब्रह्मणो व्रतम वह इस पृथ्वी के गर्भ में जो नाना प्रकार का खाद्यान्न और खनिज हैं, उसे घ्राण इन्द्रियों के द्वारा ऊर्ध्वा में गमन करा देता है और वह यह जानता है कि इस पृथ्वी में इतनी दूरी पर इतना खनिज है।

एक समय जब हम भारद्वाज मुनि महाराज को शिकामकेतु उद्दालक के यहाँ ले गएं और यह प्रश्न किया कि महाराज! ये घ्राण इन्द्रियाँ कैसे समष्टि में जाती हैं हमें व्यष्टि से समष्टि में जाना है। उन्होंने कहा कि जब इसमें जाना हो तो इस पृथ्वी के गर्भ में चले जाओ। कौन-सा खनिज कितनीदूरी पर है और कौन-सी अग्नि उसमें वहाँ रमण कर रही है और वह अग्नि का स्वरूप जब शब्द औ गन्ध धारा को ले करके गमन करती है तो दोनों को समष्टि रूप में लाना, उसको क्रियात्मक रूप देने का नाम ही समष्टि कहलाता है हमने कहा कि-प्रभु! आपय ब्रहे धनः सुता, आप धन्य हैं आप बड़े महान हैं मेरे पुत्रों! प्रत्येक ऋषि का एक ही मन्तव्य रहा है कि व्यष्टि से समष्टि में जाना ही जीवन है और समष्टि से व्यष्टि में जाना ही जीवन की रात्रि हो जाना है। उन्होंने इस प्रकार अपना उद्गीत गाया और वे अपने में मौन हो गएं परन्तु उनका चिन्तन महान बना रहा और ऋषि ने कहा कि हे देवी! मैं जानना चाहता हूँ कि व्यष्टि में हमें समष्टि में जाना है, समष्टि किसे कहते हैं?

देवी ने कहा कि हे प्रभु! यह जो श्रोत्र इन्द्रियाँ हैं इन श्रोत्र इन्द्रियों का देवता शब्द है, और जो शब्द दिशाओं में जा रहा है उसका अन्तरिक्ष से सम्बन्ध रहता है और अन्तरिक्ष में जब उसका समन्वय हमारे अन्तर्हृदयों से हो जाता है तो देखो, वह व्यष्टि से समष्टि में प्रविष्ट करा देता है इसीलिए श्रोत्रों का देवता शब्द है और शब्द का देवता अन्तरिक्ष है और वह जो शब्द वह दिशाओं में निहित रहता है। हे ऋषिवर! अग्ने ब्रह्मः इसी प्रकार प्रत्येक शब्द को अन्तरिक्ष का स्वरूप स्वीकार करता हुआ श्रोत्र इन्द्रिय अन्तरिक्ष में ही रमण करता रहे तो वह व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश हो जाता है। समष्टम् ब्रह्मा वरुणाम् ब्रह्मे लोकाम् वृताः मेरे प्यारे! व्यष्टि समष्टि दोनों का वर्णन करते हुए त्वचा का वर्णन किया कि त्वचा का देवता वायु है।

छेवी ने जब समष्टि व्यष्टि का वर्णन किया तो ऋषिवर मौन हो गएं और जो उसकी परीक्षा थी, उसको शान्त कर गएं परन्तु अपने ज्ञान और विज्ञान में वह भी रत्त होने लगे। उन्होंने कहा कि देवी! तुम्हें धन्य है, वास्तव में मैं तुम्हारे आतिथ्य को स्वीकार करूंगा। मेरे पुत्रों! उन्होंने नाना प्रकार के भोज्य पदार्थों को पान किया और कहा कि मेरा जीवन अमृत बन जाएगा। क्योंकि यह जो आतिथ्य को स्वीकार कर रहा हूँ यह मेरा मेरा मानवीयतव है और मेरी आनन्द वृत्तियों की वृत्तियाँ कहलाएंगी। बेटा! यह विचार आता रहा है कि हम अपनेपन में ही मानवीयतव को धारण करते रहें और समष्टि में व्यष्टि और व्यष्टि में समष्टि, दोनों का एक दूसरे में समावेश करते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। हम प्रत्येक इन्द्रिय के देवता को जानने का प्रयास करें। मुनिवरों! यही हमारा ज्ञान है, यही हमारा विज्ञान है, परन्तु यह जो परमात्मा का अथाह संसार-सागर है, इसके ऊपर जितना भी विचार और मनन किया जाता है उतना ही तो मानव अपने में मानवीयता की आभा में रत्त हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! आज हमारा विचार-विनिमय केवल यही है कि परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए मातम् भू वरुणाम् ब्रह्माः मेरी प्यारी माताओं के अन्तर्हृदय इस प्रकार का विदुषीय विचार, इस प्रकार का ज्ञान और विज्ञान परपता रहा है और पनपता रहेगा परन्तु उसको जानने की आवश्यकता है। माता अपने गर्भ से ब्रह्मवेत्ता पुत्र को जन्म दे देती है। ब्रह्मवेत्ता वह बाल्य है, जो ऋषि के आश्रम में आसन पर विद्यमान है और ऋषि की प्रतीक्षा कर रहा है कि किस समय वह आयें और मेरे माता-पिता और सारे कुटुम्ब की योग्यता का मुझे वर्णन करें। वह इस प्रतीक्षा में विद्यमान है तो इसका नाम बेटा! ब्रह्म ज्ञान है, ब्रह्मवेत्ता बनना है इसीलिए राजा को ब्रह्मवेत्ता बनना चाहिए। जो राजा ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्म ज्ञानी होता है उस राजा के राष्ट्र में ईश्वर के नाम पर रूढ़ियाँ नही पनपती और रूढ़ियाँ जब नही रतहीं तो राजा का राष्ट्र महान बना रहता है वह वेद की विचारधारा में रत्त रहने वाला है।

राजा रावण के यहाँ भी रूढ़ियाँ बनीं और भी नाना प्रकार के राजाओं के यहाँ भी रूढ़ियाँ हैं, परन्तु देखो, रूढ़ियाँ वहा बनी हैं जहाँ अपने मार्ग से मानव विचलित हो जाता है, जहाँ वह पथ का कुपथ में चला जाता है। इसीलिए हमें अपने में उस विचारधारा और ब्रह्मज्ञान में रत्त रहना चाहिए जिससे मानव का अन्तर्हृदय पवित्रता की वेदी पर रत्त होकर अपनी मानवीयता को अपने में धारण करता रहे और अपनी आचार संहिता को ऊँचा बनाता रहे।

यह है बेटा! आज का वाक् आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि परमपिता परमात्मा का यह जगत बड़ा अनूठा है और बड़े अनूठेपन से ही इसका वर्णन किया जाता है आगे समय आता रहेगा मैं उच्चारण करता रहूँगा। उद्गीत गाने के लिए बहुत कुछ विचार है आज के विचार को मैं अपने में यही विराम दे रहा हूँ समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

९ ऋषियों द्वारा निर्मित नियमावली ११ ०१ १९९२

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा महामना की महिमा का गुणगान गाया जाता है वे परमपिता परमात्मा महिमावादी है और उसकी महिमा कण-कण में हमें दृष्टिपात आती रहती है। मानव परम्परा से ही परमात्मा के अमूल्य ज्ञान और विज्ञानमयी जगत के ऊपर अन्वेषण और विचार-विनिमय करता रहता है। अपनी-अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके दार्शनिकजन वेदमन्त्र का उद्गीत गा करके वृत्तियों में प्रवेश करते हैं और उन वृत्तियों में परमपिता परमात्मा की महिमा को प्रायः अपने में धारण करते रहते हैं।

बेटा! आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है कि वसुन्धरा ब्रह्मा वरुण प्रह्वा हे परमपिता परमात्मा! तू वसुन्धरा के रूप में विद्यमान रहता है, तू सर्वत्र जगत के प्राणीमात्र को अपने में बसा रहा है। चाहे वे प्राणी जड़वत में हैं, चाहे चैतन्य वत में रमण करने वाले हैं परन्तु जैसे माता को वसुन्धरा को माता के रूप में वर्णन किया जाता है, इसी प्रकार परमपिता परमात्मा को वसुन्धरा के रूप में प्रायः दृष्टिपात करते रहते हैं। वसुन्धरा का एक ही अभिप्रायः होता है जो अपने में वशीभूत हो जाए, जो अपने में बसाने वाला है उसका नाम वसुन्धरा कहा जाता है हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की विवेचना प्रायः होती रही है। राजा का नाम भी वसुन्धरा के रूप में वर्णन किया गया हे माता! के गर्भस्थल में हम जैसे पुत्रों! का पोषण होता है तो उसे वसुन्धरा धेनु के रूप में वर्णन किया गया है। वेद का मन्त्र कहता है कि वसुन्धरा ब्रह्माः जैसे यह पृथ्वी वसुन्धरा है नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों को अपने में धारण कर रही है, इसी प्रकार परमपिता परमात्मा का नामकरण भी वसुन्धरा के नाम से वर्णन किया गया है।

आज का हमारा वेदमन्त्र हमें उस दिशा में ले जा रहा है जहाँ राष्ट्रवाद और मानवीयता की प्रतिभा का जन्म होता है। प्रत्येक मानव के हृदय में परम्परा से एक वाक्य, एक विडम्बना बनी हुई है कि हम प्रायः अपने को सुखद बनाना चाहते हैं। प्रत्येक प्राणी मात्र चाहे वह राष्ट्रवादी है, चाहे वह जन समूह है चाहे वह योगेश्वीर है, चाहे वह जलचर है, चाहे वह पक्षीगण है, सर्वत्र सभी के हृदय में एक ही विडम्बना बनी हुई है कि मैं सुखी बन जाऊं परन्तु सुख कैसे प्राप्त होता है? एक मानव तो अपने में यह विचार-विनिमय कर रहा है कि मैं प्रभु का ध्यानावस्थित हो करके प्रभु की सृष्टि को अपने में निहारता रहूँ तो मैं स्वतः सुखी हो जाऊंगा। एक मान यह विचार रहा है कि मैं अपने में विज्ञानवेत्ता बन जाऊं और एक अणु को दूसरे अणु में, दूसरे अणु को तीसरे अणु में परिणत करता हुआ यन्त्रवेत्ता बन जाऊं और विज्ञान को जा कनके मैं सुखी बन जाऊं। एक राष्ट्रवेत्ता यह चाहता है कि मैं सुखी बन जाऊं, आनन्दित हो जाऊं। परन्तु राजा तो यह कहता है कि मैं सुखी जब हो सकता हूँ। जब कि मेरी प्रजा सुखी हो जाए। मैं शासन कर रहा हूँ। अथवा धिराज कहलाता हूँ। वशिष्ठ कहलाता है जब तक मेरी प्रजा सुखी न होगी मैं सुख अनुभव नही करूंगा।

बेटा! भिन्न-भिन्न प्रकार के सुखों के लिए मानव अपने में विडम्बिनित बना हुआ है। देखो, हमारे यहाँ एक वेदमन्त्र आ रहा है। सत्यव्रही कृतं ब्रह्माः वरुणातम, वेद का वाक्य पुनः कहता है कि अपने को जान करके, अपने को ब्रह्म में और ब्रह्म को अपने में जब तब हम एक दूसरे में समन्वित नही होंगें तब तक हमें सुखद प्राप्त नही होगा। सबसे ऊर्ध्वा मं नाना वेदमन्त्र इस प्रकार की विवेचना कर रहे हैं इसी प्रकार ऋषियों ने बहुत पुरातन काल

में एक क्रियाकलाप बनाया और राजा के समीप राष्ट्रीयता का निर्माण किया। बेटा! मैंने तुम्हें बहुत पूर्व काल में वर्णन कराया कि भगवान मनु के काल में सबसे प्रथम राष्ट्र का निर्माण किया गया, उससे पूर्व इस पृथ्वी मण्डल पर प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्तव्य का पालन करता रहा और भगवान मनु ने जब यह विचारा कि प्रजा में एक दूसरे की कुछ अवहेलना होने लगी है तो उसी काल में उन्होंने राष्ट्रीयता का निर्माण किया।

समाज की नियमावली

एक समय भगवान मनु भयंकी वन में महर्षि कालेत्वर के द्वार पर पंहुचे। कालेत्वर ऋषि का अन्तर्हृदय मनु ही को दृष्टिपात करके प्रसन्न हुआ और उन्होंने कहा कि महाराज! कैसे भ्रमण कर रहे हो, मनु जी ने कहा कि भगवन! हम आप से कुछ विचार-विनिमय करना चाहते हैं। ऋषि ने कहा कि अवश्य ही कीजिए। मनु जी ने कहा कि-प्रभु! मैंने इससे पूर्व काल में एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके इस वेदमन्त्र का विचारा कि सम्भूति ब्रह्मा वरुणास्युतम् व्रत्म राष्ट्रम् ब्रह्वे कर्त्तार्थ, कि राष्ट्रवाद में समाज कैसे ऊँचा बन सकता है भगान आज मैं इसी प्रश्न को ले करके आपके समीप आया हूँ कि हम कैसे ऊँचे बन सकते हैं और अपने हृदय को कैसे हृदय ग्रहित बना सकते हैं कालेत्वर ऋषि ने कहा कि हे राजन! और भी इस प्रकार के नाना मन्त्रों का वेद में वर्णन है और वेद कहता है कि कृतम् देवो विमम्ब्रह्वे कृति, जो मानव अपने जीवन को नियमित बना लेता है, वह अपने में कुछ नियमित आनन्द का अनुभव करता है कालेत्वर ऋषि और भगवान मनु एक नौका में विद्यमान हो करके दोनों विचार-विनिमय कर रहे थे एक समय मनु जी ने कालेत्वर ऋषि से बोले कि महाराज! यह राष्ट्र और समाज कैसे उन्नत किया जाए? आगे आने वाला जो जगत है, इसके लिए हमें कोई न कोई बहड़की वाणी से उद्गीत गाना चाहिए।

बेटा! मुझे कुछ साहित्य दर्शनाथ करने से कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि कालेत्वर ऋषि महाराज और भगवान मनु ने समाज के लिए नियमावली बनाई। उन्होंने सबसे प्रथम यह कहा कि अपने गृह में गृह स्वामी और गृहस्वामिनी को प्रातःकालीन ब्रह्म का चिन्तन करना चाहिए और ब्रह्म के चिन्तन में ज्ञान की प्रतिभा की आवश्यकता हैं, उसे हमारे यहाँ ब्रह्मज्ञान चिन्तन कहते हैं प्रातःकालीन पति और पत्नी दोनों अपने गृह आश्रम में प्रभु का चिन्त करते, प्रभु की सृष्टि को निहारते हुए, उसकी महिमा का वेदमन्त्रों में उद्गीत गाते हुए अपने में तल्लीन हो जाएं। श्रवण करने वाला गृहस्वामी और गृहस्वामिनी और बाल्य बालिका अपने माता-पिता के उन विचारों को दृष्टिपात करके प्रसन्न हो जाएं। वह कहते रहें कि माता बड़ी प्रिय है, पितर हमारे बड़े प्रिय है। ज्ञान और विज्ञान में प्रभु के आनन्द में रत्त रहते रहें तो गृह स्वर्ग बन जाता है बाल्य बालिका भी उसी आधार पर अपने जीवन को व्यतीत करते रहें। उसके पश्चात उन्होंने देव पूजा का विधान बनाया।

देवाम् भूतं ब्रह्माः आचार्यों ने कहा है कि यह जो हमारा शरीर है वह देव पुरी है यह पंच महाभूतों की पुरी है, इसी के मध्य में आत्मा वास करता है इससे वह चेतनित रहता है, इसीलिए पंच महाभूतां के लिए देव याग करना चाहिए। गृह में सुगन्धि करना और व्रती बनना उनका कर्तव्य है। मेरे पुत्रों! कालेत्वर ऋषि व भगवान मनु ने इस प्रकार के यागों का व्यवधान बनाया। कोई भी ऐसी वस्तु नही हैं जो न होती हो। उन्होंने इसके पश्चात् बलिवैश्व यागों का वर्णन किया और भी नाना ब्रह्मागाम् भूतं ब्रह्मा अतिथि अस्ते अतिथि यागों पर हमारे यहाँ दर्शनों में बड़ा वर्णन आता है आज भी कुछ वेदमन्त्रों में उद्गीत गाया जा रहा था इससे गृहस्वामी और गृहस्वामिनी अपने कर्तव्य में, अपने क्रियाकलापों में महान बन जाते हैं। उनका विचार नम्रता में रहे क्योंकि इन क्रियाकलापों में अभिमान नही आना चाहिए। जिस भी काज में अभिमान आ जाएगा तो वह क्रियाकलाप न होने के तुल्य हो जाएगा। इस प्रकार उन्होंने समाज के गृह स्वामी और गृहस्वामिनी को एक रहन-सहन की पद्धति का निर्माण किया। बेटा! निर्माण करके कालेत्वर ऋषि ने पुनः कहा कि राजा को भी अनुशासन की आवश्यकता रहती है अन्यथा प्रजा में

कुछ सूक्ष्मता आ जाती है।

भगवान मनु नित्यप्रति समुद्र में स्नान करने जाते थे एक समय उन्होंने स्नान करने के पश्चात मार्जन और तर्पण किया। तर्पण और मार्जन करने के पश्चात जब उन्होने समुद्र में से जल लिया तो कमण्डलु में एक मछली आ गई। भगवान मनु जब उसे पुनः समुद्र में जल समर्पित करने लगे तो मछली अपनी वेदना प्रगट करने लगी। बेटा! जो प्राणी मात्र की वेदना को जानने वाला हो अथवा उनकी वेदना को जो स्वीकार करता है, वह राजा कहलाता है। कमण्डलु में से वह मछली कहती हे कि हे मनु! मैं तो तुम्हारी शरीण में आई हूँ क्योंकि समुद्र में प्रायः बड़ी मछली, सूक्ष्म मछलियों को आहार करके अपने उदर की पूर्ति कर प्रबल बन जाती हैं मैं बड़ी मछली का आहार बनना नही चाहती तो आपकी शरण में आ गई। भगवान मनु ने उसकी वेदना का वाक्य स्वीकार कर लिया क्योंकि प्रत्येक इन्द्रियों पर जय करने वाला प्राणीमात्र की वेदना को जानता है राजा मछली को अपने संग ले आए। कुछ समय तक वह मदली कमण्डलु में रही फिर उन्होंने उसके लिए गढ़ेला बना दिया और उसमें मछली पनपती रही। कुछ समय के पश्चात मछली प्रबल हो गई और मछली ने कहा कि हे मनु! मैं अब अपने राष्ट्र समुद्र में प्रवेश कर रही हूँ जहाँ से मेरा आगमन हुआ था। देखो, चतुर्दशी के समय जल प्लावन आयेगा और हिमालय में तुम्हारी नौका का मिलन होगा तो उसमें मुझे जकड़ देना। तुमने मेरी रक्षा की है भगवान मनु ने कहा कि राजा वह होता है जो मछली से ले करके मानव तक की रक्षा करें क्योंकि वह जो रक्षार्थी है, वही राष्ट्र का द्यौतक कहलाता है।

भगवान मनु ने नियमावली बनाई कि राजा प्रातःकालीन ब्रह्म का चिन्तन करे। उसके पश्चात वह अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो और आचार्यों के मध्य में विद्यमान हो करके देवपूजा, अग्निहोत्र करें और उसके पश्चात वह ब्रह्मयाग करने वाला हो। राजा के राष्ट्र में नाना ब्रह्मवेत्ता आकर अपने-अपने उपदेश और अपनी-अपनी विचारधारा को दें। राजा प्रश्न करने वाला हो और प्रजा उत्तर देने वाली हो। जैसे मुनिवरों! मुझे राजा जनक का काल मुझे स्मरण है। राजा जनक को विदेह कहते थे। जिसका देह से मोह न हो, जो मोह ममता से रहित होता है वह विदेह है। मोह-ममता से वह विजयी होता है जिसे ज्ञान होता है और ज्ञान उसे होता है जो सत्संग करता है, जो ऋषि-मुनियों के चरणों की वन्दना करके उनसे ब्रह्मयाग कराता रहता है। ब्रह्मयाग का अभिप्रायः ब्रह्म कर चर्चाएं हैं गृह में ब्रह्मज्ञान की चर्चाओं से राजा उन्मुक्त हो जाता है, वह उदासीन हो जाता है तो उसकी प्रजा और अपने पुत्र में किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व नही रहता। भगवान मनु ने कहा कि राजा प्रातःकालीन याग के पश्चात बौद्धिक ज्ञान में रत्त रहना चाहिए। वह ब्रह्मयाग में ऋषि-मुनियों के मध्य में विद्यमान हो। उसके पश्चात वह राजा अपने राष्ट्र के न्यायालय में न्याय करता है तो वह राजा पवित्र होता है, वह राजा मुनि की भांति वशिष्ठ कहलाता है राजा जब इस प्रकार का होता है तो प्रजा में किसी प्रका कर सुख नही होता।

मुझे स्मरण आता रहता है कि महाराज! दिलीप जी कामधेनु के पीछे भ्रमण करते हुए भयंकर वन में पंहुचे। उसके पीछे भ्रमण करते हुए उन्हें बारह वर्ष हो गये, उसी का दुग्ध पान करते, जहाँ वह शयन करती उसी के संग वहाँ वे शयन करते। एक समय जब सिंह ने उसके ऊपर आक्रमण किया तो महाराज दिलीप ने कहा कि हे सिंहराज! मैं जानता हू कि यह वन तेरा राज्य है और तेरे राज्य में यह मेरी कामेधनु आ गई है, मैं भी तेरे राज्य में हूं। हे सिंहराज! तू मेरी धेनु को मृत्यु नही दे सकता क्योंकि यह मेरी पूज्या है। राजा की अहिंसामयी संकल्प शक्ति से सिंहराज ने उस कामधेनु को छोड़ दिया और कामधेनु राजा के समीप आ गई। देखो, वह सिंहराज कहता है कि हे राजन! तेरा राष्ट्र बड़ा पवित्र है तेरे राष्ट्र में हम निद्वन्द हो करके विचरण करते हैं तेरे राज्य में कोई हिसंक नही हैं हमें कोई मृत्यु देने वाला तेरे राष्ट्र में नही हैं। यदि यह कामधेनु तेरी पूज्य है तो मेरी

भी है, मैं भी इसे त्याग रहा हूँ। सिंहराज अपनी वेदना ऐसा ऐसा विचार देता है। बेटा! विचार प्रत्येक आत्मवेत्ता के समीप रहते हैं। जहाँ इस शरीर मं आत्मा है, वह अपन विचार अवश्य देता रहता है, उसको जानने की आवश्यकता है और जब जानने लगता है तो ज्ञान हो जाता है राजा के राष्ट्र में यह विचार होना चाहिए। राजा को चाहिए कि अपने राष्ट्र में हिंसा न होने दें, अहिंसा में परिणत हो जाएं। राजा जब अहिंसा में परिणत हो जाता है तो वहाँ प्रजा में न तो किसी प्रकार की विडम्बना होती है, न रूढ़िवाद होता है, न ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार के सम्प्रदाय होते हैं परन्तु राजा के लिए तपस्या की आवश्यकता होती है तो वह अपने में जय होता है।

याज्ञकाचार्य के गृह सूत्र

बेटा! कालेत्वर ऋषि और भगवान मनु ने महर्षि याज्ञकाचार्य को निमन्त्रित किया और अपनी नौका में विद्यमान हो करके महर्षि याज्ञकाचार्य से कहा कि-प्रभु! तुम एक नियमावली बनाओ। उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा को निमन्त्रित किया और कहा कि हे अथर्वा! तुम ब्रह्मा के पुत्र हो अथर्वा उसे कहते हैं जो स्थिर रहने वाला है, जिसमें चंचलता न हो। उन्होंने वेद में से गृह सूक्तों को ले करके गृहसूत्रों में सूत्रित करते हुए विचार दिये। वे विचार इस प्रकार हैं कि पति पत्नी सोम की उपासना करें और सोम के द्वारा सन्तान उपार्जन करें, माताएं प्रजा को जन्म देने वाली हों जिससे राष्ट्र व समाज ऊँचा हो बने। याज्ञकाचार्य ने सर्वत्र प्रकृति मण्डल और नक्षत्रों को माप करके कहा कि तीन प्रकार के नक्षत्र कहलाए जाते हैं किसी में जल प्रधान है किसी में अग्नि प्रधान है किसी में पृथ्वी प्रधान है और किसी में वायु की पुट लगती है, किसी में अन्तरिक्ष की पुट लग जाती है यह पुट नक्षत्रों के आधार पर लगती है। याज्ञकाचार्य ने गृह सूत्रों का प्रावधान किया। बेटा! वह गृह स्वर्ग कहलाता है जहाँ बुद्धिमानों का आगमन होता हो और उनके विचारों से जो अपने गृह को सजातीय बनाते है उनका सौभाग्य बना ही रहता है। गृह सूत्रों को ले कर उन्होंने कहा कि इससे मात, पिता, प्रजा सब प्रसन्न रहेंगें और गृह इससे स्वर्ग बन जाएगा, त्याग प्रवृत्ति बनी रहेगी। महाराज अथर्वा ने भी इसी प्रकार अपनी नियमावली बनाई कि शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी को गृह सूत्रों का वर्णन कराया जाएं।

पवित्र शिक्षा प्रणाली

भगवान मनु ने आश्रमनों का निर्माण किया। उन चारों ऋषियों के विराजमान होने पर कालेत्वर ऋषि ने सबसे प्रथम जीवन को ब्रह्मचर्य कहा, दूसरे जीवन को गृह आश्रम वास कहा है और तीसरा जीवन वानप्रस्थ है। जो इन्द्रियों से तृप्त होने वाला आचार्य हैं, माताएं जिनका गृह से मन उपराम हो गया है, वे विद्यालयों में शिक्षा देने का क्रियाकलाप बनाते हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब भगवान मनु, कालेत्वर ऋषि, याज्ञकाचार्य और ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने शिक्षा प्रणाली का निर्माण किया और यह कहा कि शिक्षा प्रणाली में वह शिक्षक होने चाहिएं जिनकी इन्द्रियाँ तृप्त हो गई हों, जो ब्रह्मचर्य के ज्ञान से और गृह आश्रम में अपनी प्रज को उत्पन्न करके तृप्त हो गया है। वानप्रस्थी विद्यालयों में शिक्षा देते हैं। और उनकी सात्विक शिक्षा, विचार से जब ब्रह्मचारी दर्शन को आचार्य के चरणों में अध्ययन करते हैं तो गुरु इन्हें तपश्चर बना देते हैं।

विज्ञान के यन्त्रों से तमोगुण दृष्टिपात आता है, जब मनों में यह भाव उत्पन्न हो जाते हैं कि इस प्रकार का ज्ञान और विज्ञान ऋषि-मुनियों के मस्तिष्कों में रहता था कि प्रत्येक विद्यालय में जहाँ शिक्षा दी जाती वहाँ एक यन्त्र विद्यमान है औरयदि शिक्षक के हृदय में चंचलता आ गई तो वह चंचलता यन्त्रों में प्रवेश कर गई और यन्त्रों में उसके चित्र आ रहे हैं । उसी समय वैज्ञानिकों ने कहा कि आचार्य! तुम्हारे हृदयों में चंचलता आ गई है, तमोगुण आ गया है वह राजा के समीप जाता है कि उस विद्यालय में वह शिक्षक नही रहना चाहिए क्योंकि शिक्षक की जो तरंगें होती हैं शिक्षक के जो विचार होते हैं वह विचार ब्रह्मचारियों के, ब्रह्मचारिणीयों के हृदय से स्पर्श करते हैं और

वही विचार उनके तमोगुणी बन जाते हैं तो शिक्षा प्रणाली भ्रष्ट हो जाती है और जब शिक्षा प्रणाली समाज में नही रहती तो राष्ट्रीयता वह समाज दोनों ने होने के तुल्य बन जाते हैं।

मेरे पुत्रों! मुझे वह समय स्मरण है कि जब महाराज अश्वपति के विद्यालयों में एक आचार्य शिक्षा दे रहा था तो शिक्षा देते-देते वह कुछ मौन हो गए। क्योंकि मन कहीं दूर चला गया, तमोगुण में छा गया। वही तरंगें ब्रह्मचारियों के अन्तर्हृदयों में प्रवेश होने लगीं। एक यशवेत नाम के ब्रह्मचारी कि हे भगवन! आचार्य गुरुजन! तुम्हारे मन मस्तिष्क में चंचलता आ गई है और मेरे अन्तर्हृदय को वह स्पर्श कर रही हैं। आपका यह शब्द जो मेरे अन्तःकरण में प्रवेश हो गया है, वह मेरे हृदय नाना प्रकार की अशुद्ध तरंगों को जन्म दे रहा है, ब्रह्मचारीने जब यह कहा तो आचार्य ने कहा कि हे ब्रह्मचारियों! मैं क्षमा का पात्र हूँ मुझे क्षमा करो क्योंकि मेरे अन्तर्हृदय में वास्तव में चंचलता आ गई। आचार्य विद्यालय को त्याग करके रात्रि समय गायत्री पठन-पाठन करते हुए निर्जला रह करके तपस्या में परिणत रहे। जब तक वह तरंगें समाप्त नही हुईं तब तक वह तपस्या करते रहे। उसके पश्चात पुनः विद्यालय में आ करके उन्होंने वह ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया तो विचार क कि यदि राजा अपने राष्ट्र अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है तो वानप्रस्थियों के द्वारा मेरी पुत्रियों को, पुत्रों! को शिक्षा दी जानी चाहिए। जब इस प्रकार की शिक्षा होगी तो उनकें हृदयों में तमोगुण नही आयेगा। और जिस काल में ब्रह्मचारी और आचार्यजन दोनों स्वार्थपरता मं रहेंगें तो गुरु और शिष्य दोनों ही देखो, अग्नि में प्रदीप्त हो जाते हैं बेटा! मैं उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि इस प्रकार के आचार्य, ब्रह्मचारी होंगें तो मरण र्प्यनत उनके ऊँचे विचार बने रहेंगें, उनके विचरों में चंचलता नही आयेगी, विचारों में विकृतता नही आयेगी, विचार बिखरेगा नही। जहाँ उसका मन-मस्तिष्क एकाग्र हुआ तो आचार्य का दिया हुआ ज्ञान उसके समीप आ जाता है।

बेटा! मुझे स्मरण है कि जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययनकरते थे तो अध्ययन के उपरान्त सांयकाल आचार्यजी का कुछ उपदेश होता तो पंक्ति में ब्रह्मचारी हैं पंक्ति में मृगराज है, एक पंक्ति में सिंहराज, सब उपदेश पान कर रहे हैं क्योंकि प्रत्येक प्राणी के हृदय में आत्मा होती है इनके हृदय में भी आत्मा है और सर्पराज में भी आत्मा है और वह आत्मा ज्ञान चाहता है आत्मा प्रभु की प्रशंसा को जानना चाहता है। पुत्र माता के ऊँचे विचारों को अपने में धारण करना चाहता है पुत्र माता के ऊँचे विचारों को अपने में धारण करना चाहता है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि जब मैं अपनू पूज्यपाद गुरुदेव से कहता था कि भगवन! हम तो आपके शिष्यगण हैं, प्रभु यह क्या कारण है जो हिंसक प्राणी भी आपकी वन्दना कर रहा है और वह कहा करते थे कि तपस्याम् भूतं ब्रह्मा ब्रह्े व्रत्यं देवत्वं ब्रह्मा हे ब्रह्मचारियों! सात्विक ज्ञान का आत्मा से जितना समन्वय होगा उतना आत्मा वाले प्राणी इसको श्रवण करके प्रसन्न हो जाते हैं। यह मानव का एक मार्ग है, इस मार्ग में गमन करने वाला मानव विचलित नही होता। वह जहाँ मन को चाहता है कि मेरा मन यहाँ लग जाएं, वही मन स्थिर हो जाता है मानव का मन दुरित में जाने से रूक जाता है। क्योंकि अध्ययन से, विद्या में तपा हुआ मन मस्तिष्क है, प्राण है। वह उसमें तपा हुआ होता है, इसीलिए उसका मन स्थिर होता है जब इस प्रकार की प्रणालियां होती हैं तो उन प्रणालियों से ही समाज में एक महानता का जन्म होता है। मैंने बहुत समय को दृष्टिपात करते हुए यह कहा कि आचार्य तपे हुए विचार, माता के विचार, तपस्वियों के विचार बड़े महान होते हैं।

मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है कि जिस समय माता मलदाल्सा का चतुर्थ पुत्र राज्य को नही त्याग रहा था तो उने तीन सन्यासी पुत्रों! ने महात्माओं ने कहा कि हे राजन! तू इस राष्ट्र को क्यों नही त्याग रहा है जब मनु जी ने यह नियम बनाया है कि जब जेटा पुत्र सुयोग्य हो जाएं तो उस समय जेठे पुत्र को राज्य दे करके राजा को राष्ट्र त्याग देना चाहिए। वह तपस्वी बने या अपने अनुभव के विचारों को विद्यालयों में ब्रह्मचारियों

को प्रदान करे। देखो, राजा ने राष्ट्र फिर भी नही त्यागा तो उन सन्यासी महात्माओं ने दूसरे राष्ट्र से आक्रमण कराया और उसे कारागार में परिणत हो गया तो उस समय उन्होंने मन में विचारा और लेखनीबद्ध माता के विचार को अध्ययन किया तो माता के विचार थे कि पुत्र! यह संसार निस्सार है, इसमें कोई सार नही हैं। जब राजा ने यह पठन-पाठन किया तो वह माता के तपे हुए विचार राजा के मन में अन्तःकरण में ओत-प्रोत हो गएं और अन्तःकरण पवित्र हो गया। उन्होंने कहा कि हे राजन! मैं इस राष्ट्र को त्याग रहा हूँ। अपने तीनों भ्राता सन्यासियों को निमन्त्रण दे करके कहा कि यह राज्य लो। वह राष्ट्र को त्याग करके भयंकर वन में आत्मा का शोधन करने के लिए चले गये। विचार क्या कि माता के विचारों को जब उन्होंने ग्रहण किया तो उससे हृदय पवित्र बन गया, ममता का अन्धकार नष्ट हो गया।

मेरे प्यारे! यह शिक्षा यह उज्ज्वलता है। इसको लेकर जब मानव गमन करता है तो मानव, मानव की आभा में परिणत हो जाता है। बेटा! ब्रह्मा कु पुत्र अथर्वा, याश्काचार्य, भगवान मनु और कालेत्वर ऋषि महाराज ने नौका में विद्यमान हो करके सब प्रणालियों का निर्माण किया था, जिससे समाज सुखद हो सके यहाँ रूढ़िवाद की उत्पति न हो सके। परमात्मा के सूत्र में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है और इसको इसी प्रकार स्वीकार करते चले जाओ, यही हमारी नियमावली होनी चहिए, राष्ट्र, समाज, मन, मस्तिष्क जब ही ऊँचे बनते हैं जब तपस्यामी विचार होते हैं, तपस्यामयी ज्ञान होता है। तपस्या से ही मानव गम्भीरता के क्षेत्रों में प्रविष्ट हो जाता है। वेद का मन्त्र कहता है कि यशोधर्म ब्रह्मा मनः वास्तम् प्राणम् ब्रह्वे कृतो, यह प्राण, मन, मस्तिष्क विद्या और ज्ञान से जब प्रकाशित होते हैं तो प्रकाश ही प्रकाश उसे दृष्टिपात आने लगता है और प्रकाश में मानव तत्पर हो जाता है। यह ऋषि-मुनियों ने एक नियमावली बनाई। भगवान मनु ने कहा कि ब्रह्मचर्य के पश्चात गृहस्थ आश्रम, गृहस्थ आश्रम के पश्चात वानप्रस्थ आश्रमी जब गृह को त्याग देते हैं तो राष्ट्र पर उसका दायित्व बनता है और वह शिक्षालयों में ब्रह्मचारियों को शिक्षा देते हैं। उसके पश्चात वह आह्वनीय नाम की अग्नि का पूजन करते हैं आह्वनीय नाम की अग्नि ज्ञान को कहते हैं सन्यासम् भूतं ब्रह्मे त्यागाम् भूदय ब्रहे बेतामम व्रति वरुणाम, वही तो ऋषि बनते हैं जो अग्नि के तुल्य होते है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने इस पद्धति का निर्माण किया कि उनके वस्त्र भी अग्नि जैसे प्रकाशमान होने चाहिएं। वस्त्र का विचारों का मन-मस्तिष्क का एक ही समन्वय होता है। यदि हमारा वस्त्र हृदय से सम्बन्धित है तो हृदय, वस्त्र और मस्तिष्क तीनों एक हीतुल्य कहलाते हैं जैसे ज्ञानम् वरुण ब्रहे अपताम्, जो अग्नि हमारे यहाँ यज्ञशाला में प्रदीप्त होती है और जो विचारों में अग्नि प्रदीप्त होती है और एक अग्नि जो ज्ञान के द्वारा हृदयों में पनपती रहती है, जिससे हृदय पवित्र बनते हैं, जिसे ज्ञान रूपी अथवा ब्रह्म अग्नि कहते हैं उस ब्रह्मः अग्नि में मानव अग्नि के तुल्य बन करके वह पवित्र बन जाता है।

बेटा! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट नही करना चाहता हूँ केवल विचार-विनिमय यह कि हम परमपिता परमात्मा का जो विधान है, ऋषि-मुनियों के जो तपे हुए विचार हैं, उनको अपने में धारा करते ुए उनके अनुसार अपने जीवन को बनाते हुए अग्रणीय बनते चले जाएं। हम अपने मन को मस्तिष्क को प्राण में प्रवेश करते हुए इस लोक को जानें। विद्यालयों में हमारी शिक्षा प्रणाली इतनी पवित्र हो और शिक्षक इतने सुचरित्र होने चाहिएं जिससे ब्रह्मचारियों का हृदय पवित्रता से ओत-प्रोत हो जाए। माता इतनी महानता में पवित्र होनी चाहिए कि अपने गर्भस्थल में बालक को ओजस्वी बना दें, ब्रह्मवेत्ता बना दे। मेरे प्यारे! जब महर्षि श्वेतकेतु अपनी माता के गर्भ में विद्यमान थे तो माता यह कहती कि हे बालक! तू मेरे ही सूत्र में सूत्रित हो रहा है मुझे वसुन्धरा कहते हैं, तू मेरे में बर रहा है तू मेरे गर्भाशय को दूषित मत कर देना। माता यह अपनी आत्मा की पुकार करती रहती थी। श्रेष्ठ केतु मुनि अपने में मुनीश्वर बने और उनके जीवन से द्वितीय महापुरूष शिक्षा ग्रहण करते थे। इसी प्रकार माता शिशु को अपने में

ऊँचा बना देती है। जब गर्भ में ब्रह्मचारी होता है तो वह कहती है कि तन्वमा पाना नानावसी जन्म ब्रह्मे कृतं देवत्वान्, हे बालक! तू कहाँ से आया है मेरे गर्भ में तू क्यों आया है मैं तुझे ब्रह्मवेत्ता बनाना चाहती हूँ जिससे मेरा गर्भाशय ऊँचा बने। माता प्रभु से प्रार्थना करते हुए यह पुकारती है कि हे प्रभु! मैं प्रार्थी हूँ मैं अपने प्राण को माध्यम से अपने गर्भ की आत्मा को दृष्टिपात करना चाहती हूँ तो आत्मा से आत्मा का मिलान होता है तो वह जब इस प्रकार की राष्ट्र और समाज में विद्या होती है, ज्ञान होता है, विवेकमयी जीवन होते हैं तो राष्ट्र और समाज ऊँचे बनते हैं समाज दार्शनिक बनता है तो दर्शन ऊँचा बन जाता है और प्रभु प्राप्त होता है वहाँ नाना प्रकार की रूढ़ियां का जन्म नही होता। वहाँ एकोकी विचार रहते हैं, वहाँ एकोकी नियमावली बनी रहती है।

मैं उच्चारण कर रहा था कि हे माता! वसुन्धरा! तू अपने में धारण करने वाली है हमारे वैदिक साहित्य में नाना प्रकार की वसुन्धरा का वर्णन आता है, वसुन्धरा नाम पृथ्वी का है, वसुन्धरा परमपिता परमात्मा का नाम है वसुन्धरं ब्रह्मा वसुन्धरं ब्रह्मे जो अपने में बसाने वाली है, उसी का नाम वसुन्धरा है। माता के गर्भ से पृथक होते हैं तो पृथ्वी अपने में धारण कर लेती है तो वह वसुन्धरा है। वह नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ देती है। इसी प्रकार माता अपने गर्भ में हमें धारण कर रही है। प्रभु का दिया हुआ जो ज्ञान है उसे वह माता वसुन्धरा अपने में धारण करके अपने गर्भाशय को ऊँचा बना रही है।

मेरे प्यारे! आज के विचारों का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने विचारों में एक नियमावली बनाने वाले बनें और हमारे राष्ट्रीय जीवन में एक मानवीय पद्धति होनी चाहिए। बिना पद्धति के मानव के जीवन को निर्माण नही होता। माता के गर्भ से ले करके मरण पर्यनत एक नियमावली बनी रहती है कि हम इस नियम के आधार पर शिक्षा का अध्ययन करें अपने क्रियाकलाप में तत्पर रहें। अपना व्यवसाय भी मानवीयता से गुथा हुआ हो जिससे आत्मा के ऊपर किसी का पापाचार न हो। इस प्रकार जो जीवन को ऊँचा बनाता है तो उसमा मन मस्तिष्क सदैव परमात्मा में संलग्न रहता है वह पद्धतियाँ आचार्यों के समीप प्राप्त होती हैं।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि यदि समाज को ऊँचा बनाना है तो प्रत्येक मानव के अपने कर्तव्य, आत्मा परमात्मा का ज्ञान और राष्ट्रीयता ऊँची होनी चाहिए। यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा।